वार्षिक रु. ६० मूल्य रु. ८.००

विवेक-ज्योति

स्वामी विवेकानन्द का १५० वाँ जन्मवर्ष

वर्ष ५१ अंक ८ अगस्त २०१३

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अगस्त २०१३

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक

स्वामी विदेहात्मानन्द

वर्ष ५१
अंक ८

वार्षिक ६०/– **एक प्रति ८/–**

५ वर्षों के लिये – रु. २७५/–

आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – रु. १,२००/–

(सदस्यता-शुल्क की राशि स्पीडपोस्ट मनिआर्डर से भेजें अथवा बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –

वार्षिक ९०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ४००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, २२२४११९

(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

प्रिंट आर्डर - २३,०००

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट - 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। उसके बाद अंक उपलब्ध रहने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा।

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

लेखकों से निवेदन

रचना भेजते समय निम्न बातों पर ध्यान दें –

(१) धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा किसी भी जीवनोपयोगी विषयक रचना को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।

(२) रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिक-से-अधिक चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हो। भेजने के पूर्व एक बार स्वयं अवश्य पढ़ लें।

(३) लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।

(४) आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।

(५) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ कवितायें इतनी संख्या में आती हैं कि उनका प्राप्ति-संवाद देना सम्भव नहीं होता। स्वीकृत होने पर भी उसके प्रकाशन में ६-८ महीने तक लग सकते हैं।

(६) अनुवादित रचनाओं के मूल स्रोत का पूरा विवरण दिया जाय तथा उसकी एक प्रतिलिपि भी संलग्न की जाय।

(७) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त मतों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा।

(८) 'विवेक-ज्योति' के लिये भेजी जा रही रचना यदि इसके पूर्व कहीं अन्यत्र प्रकाशित हो चुकी हो या प्रकाशनार्थ भेजी जा रही हो, तो उसका भी उल्लेख अवश्य करें। वैसे इसमें मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है।

पुरखों की थाती

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनः चन्दनं चारुगन्धं
छिन्नः छिन्नः पुनरपि पुनः स्वादुरेवेक्षुदण्डः
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः कांचनं कान्तवर्णं
न प्राणान्ते प्रकृति-विकृतिर्जायते ह्युत्तमानाम् ।२९७

– चन्दन को चाहे जितना भी घिसा जाय, वह मधुर सुगन्ध ही देता है। गन्ने को चाहे जितना भी काटा जाय, उसकी मिठास यथावत् बनी रहती है। सोने को चाहे जितना भी जलाया जाय, उसकी चमक वैसी ही बनी रहती है। इसी प्रकार उत्तम स्वभाव के (महान्) लोगों का प्राण भी संकट में पड़ जाय, तो भी उनके चरित्र में कोई बदलाव नहीं आता।

चरन् वै मधु विन्दति, चरन् स्वादुमुदुम्बरम् ।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन् ।।२९८।।

– चलते हुए को मधु की प्राप्ति होती है। चलता हुआ व्यक्ति ही मधुर फल का आनन्द पाता है। सूर्य के परिश्रम को देखो, वह अविश्रान्त भाव से निरन्तर चलता रहता है। (ऐतरेय ब्रा.)

चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन पण्डितः ।
न समीक्ष्यापरं स्थानं पूर्वमायातनं त्यजेत् ।।२९९।।

– विद्वान् (बुद्धिमान) को चाहिये कि वह एक पाँव उठाते समय दूसरे पाँव से दृढ़तापूर्वक खड़ा रहे। नये स्थान को जाँचे-परखे बिना पुराने स्थान को न छोड़े।

चन्दन-तरुषु भुजङ्गा, जलेषु
कमलानि, तत्र च ग्राहाः ।
गुणघातिनश्च भोगे खलाः,
न च सुखान्यविघ्नानि ।।३००।।

– चन्दन के वृक्षों में सुगन्ध होती है, पर उससे सर्प भी लिपटे रहते हैं; कमलों से परिपूर्ण सरोवर में घड़ियाल भी निवास करते हैं; भोगों के साथ ही गुणों का नाश करनेवाले दुष्ट भी मिलते हैं। निर्विघ्न सुख जैसा इस संसार में कुछ नहीं है।

चम्पकेषु यथा गन्धः कान्ति-मुक्ताफलेषु च ।
यथेक्षुदण्डे माधुर्यम्-औदार्यं सहजं तथा ।।३०१।।

– जैसे चम्पा के पुष्पों में स्वभाव से ही सुगन्धि होती है, जैसे मोती के दानों में स्वभाव से ही चमक होती है, जैसे गन्ने के टुकड़े में स्वभाव से ही मिठास होती है, वैसे ही व्यक्ति में स्वभाव से ही उदारता होती है।

चिन्तनीया हि विपदाम् आदावेव प्रतिक्रिया ।
न कूप-खननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे ।।३०१।।

– आनेवाले संकट से पहले ही सावधान रहकर उसका समाधान सोचकर रखना उचित है, क्योंकि घर में आग लग जाने के बाद कुँए की खुदाई आरम्भ करना उचित नहीं होता।

चिन्ता चिता समा ह्युक्ता, बिन्दुमात्रं विशेषता ।
सजीवं दहते चिन्ता, निर्जीवं दहते चिता।।३०२।।

– चिन्ता और चिता – दोनों को एक समान ही कहा गया है, दोनों में भेद केवल एक बिन्दु मात्र अर्थात् अल्प सा है और वह यह कि जहाँ चिता मरे हुए को जलाती है, वहीं चिन्ता जीवित को ही जलाती रहती है।

चिन्ता त्यज रघुश्रेष्ठ, चिन्ता कार्य विनाशिनी ।।३०३

– चिन्ता को त्यागो, क्योंकि यह काम बिगाड़ती है।

चिता-चिन्ता तयोर्मध्ये चिन्ता एव गरीयसी ।
सजीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिता ।।३०४।।

– चिता और चिन्ता के बीच चिता ही बेहतर है; क्योंकि चिता तो मरने के बाद जलाती है, जबकि चिन्ता तो जीते-जी ही जलाती रहती है।

❖ (क्रमशः) ❖

श्रीरामकृष्ण-वन्दना

(भीमपलासी–कहरवा)

हे रामकृष्ण मम अन्तर में,
तुम आओ नित्य निवास करो।
निज चिन्मय रूप प्रगट करके,
मोहान्धकार का नाश करो।।

जग को निर्मल सुखमय करने,
तुम फिर आये हो इस युग में,
कर धर्म-प्रतिष्ठापन जग में,
सबके भव-भय-पीड़ा हरने;
अपनी करुणा के सौरभ से,
जन-जीवन वास-सुवास करो।।

जीवन-पथ है अज्ञात मुझे,
मैं भटक गया हूँ माया में,
विषमय विषयों से भ्रमित हुआ,
थक कर चरणों में आया मैं;
शरणागत दास तुम्हारा हूँ,
सच कहता हूँ विश्वास करो।।

तव पद्मपुंज सम चरणों में,
चित मेरा प्रतिपल लगा रहे,
तुम मातु-पिता, मम बन्धु-सखा,
यह बोध सतत ही बना रहे;
होठों पर चिर बसनेवाली,
अपनी वह मधुमय हास करो।।

तव कर्मों में ही मेरा यह,
तन-मन-जीवन सब लगा रहे,
तव स्मरण-मनन में मेरा चित,
प्रभु सदा-सर्वदा पगा रहे;
जब अन्त समय ही आ पहुँचे,
करके 'विदेह' निज पास करो।।

मैं भारत वापस लौटा

स्वामी विवेकानन्द

(स्वामीजी ने अपनी आत्मकथा नहीं लिखी, तथापि उनके स्वयं के पत्रों तथा व्याख्यानों और उनके गुरुभाइयों के संस्मरणों में यत्र-तत्र उनके अपने जीवन-विषयक बातें आ गयी हैं। उनकी ऐसी ही उक्तियों का एक संकलन कोलकाता के अद्वैताश्रम द्वारा 'Swami Vivekananda on Himself' शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ है। उसी के आधार पर बँगला के सुप्रसिद्ध साहित्यकार शंकर ने 'आमि विवेकानन्द बलछि' शीर्षक के साथ एक अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित कराया है। हम उपरोक्त दोनों ग्रन्थों तथा कुछ अन्य सामग्री के संयोजन के साथ यह संकलन क्रमश: प्रकाशित कर रहे हैं। इसके द्वारा स्वामीजी के अपने ही शब्दों में उनके जीवन तथा ध्येय का एक प्रेरक विवरण प्राप्त होगा। – सं.)

मेरा विश्वास है कि नेता का निर्माण एक जन्म में नहीं होता। उसे इसी के लिए जन्म लेना पड़ता है। क्योंकि कठिनाई संगठन तथा योजना बनाने में नहीं है; बल्कि नेता की सच्ची परीक्षा तो इसमें है कि वह विभिन्न मत के लोगों को उनकी सर्वमान्य सहानुभूतियों में बाँधे रख सकता है। और यह प्रयास के द्वारा नहीं, बल्कि अचेतन भाव से ही किया जा सकता है।[१]

पश्चिमी देशों से लौटने के कुछ ही समय पूर्व एक अंग्रेज मित्र ने मुझसे पूछा था, "स्वामीजी, चार वर्षों तक विलास की लीलाभूमि गौरवशाली महाशक्तिमान् पश्चिमी भूमि पर भ्रमण कर चुकने पर आपकी मातृभूमि अब आपको कैसी लगेगी?" मैं बस यही कह सका, "पश्चिम में आने के पूर्व मैं भारत से प्यार ही करता था, पर अब तो भारत की धूलि ही मेरे लिए पवित्र है, भारत की हवा अब मेरे लिए पावन है, भारत मेरे लिए तीर्थ है।"[२]

समाज में, संसार में, बिजली की शक्ति के समान काम करना होगा।... चरित्र गठित हो जाय, फिर मैं तुम लोगों के बीच आऊँगा।... आध्यात्मिकता की बड़ी भारी बाढ़ आ रही है – साधारण व्यक्ति महान् बन जायेंगे, अनपढ़ उनकी कृपा से बड़े बड़े पण्डितों के आचार्य बन जायेंगे – **उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्त वरान्निबोधत** – उठो, जागो और लक्ष्य तक पहुँचे बिना रुको मत।

उठो, उठो, बड़े जोरों की तरंग आ रही है, Onward, Onward (आगे बढ़ो, आगे बढ़ो), स्त्री-पुरुष आचण्डाल सब उनके निकट पवित्र हैं। Onward, Onward (आगे बढ़ो, आगे बढ़ो)। नाम का समय नहीं है, यश का समय नहीं है, मुक्ति का समय नहीं है, भक्ति का समय नहीं है, इनके बारे में फिर कभी देखा जायेगा। अभी इस जन्म में उनके महान् चरित्र का, उनके महान् जीवन का, उनकी महान् आत्मा का अनन्त प्रचार करना होगा। काम केवल इतना ही है, इसको छोड़ और कुछ नहीं। जहाँ उनका नाम जायेगा, कीट–पतंग तक देवता हो जायेंगे, हो भी रहे हैं, क्या देखकर भी नहीं देखते? यह बच्चों का खेल नहीं, यह बुजुर्गी छाँटना नहीं, यह मजाक नहीं – **उत्तिष्ठत जाग्रत** (उठो, जागो) – प्रभु ! प्रभु ! वे अपने पीछे हैं। मैं और लिख नहीं सकता – Onward (आगे बढ़ो) – केवल इतना ही कहता हूँ कि जो जो मेरा यह पत्र पढ़ेंगे, उन सब में मेरा भाव भर जायेगा, विश्वास करो। Onward (आगे बढ़ो) – प्रभु ! प्रभु !... मुझे अनुभव हो रहा है मानो कोई मेरा हाथ पकड़कर लिखा रहा है। Onward (आगे बढ़ो) – प्रभु ! प्रभु ! सब बह जायेंगे – होशियार – वे आ रहे हैं। जो-जो उनकी सेवा के लिए – उनकी सेवा नहीं वरन् उनके पुत्र दीन-दरिद्रों, पापी-तापियों, कीट-पतंगों तक की सेवा के लिए तैयार होंगे, उन्हीं के भीतर उनका आविर्भाव होगा। उनके मुख पर सरस्वती बैठेंगी, उनके हृदय में महामाया महाशक्ति आकर विराजित होंगी।[३]

हम तारों को अपने दाँतों से पीस सकते हैं, बलपूर्वक तीनों लोकों को उखाड़ सकते हैं। क्या तुम हमें नहीं जानते? हम श्रीरामकृष्ण के दास हैं![४]

मेरे बच्चों को संघर्ष में कूदना होगा, संसार त्यागना होगा – तब दृढ़ नींव पड़ेगी।... मृत्युपर्यन्त काम करो – मैं तुम्हारे साथ हूँ और जब मैं न रहूँगा, तब मेरी आत्मा तुम्हारे साथ काम करेगी। यह जीवन आता और जाता है – नाम, यश, भोग, यह सब थोड़े दिन के हैं। संसारी कीड़े की तरह मरने से कहीं अधिक अच्छा है कर्तव्य क्षेत्र में सत्य का उपदेश देते हुए मरना। आगे बढ़ो![५]

तुमने ईसा मसीह की यह वाणी सुनी होगी, "मेरे शब्द ही मेरी आत्मा और मेरा जीवन है।" इसी प्रकार मेरे शब्द भी मेरी आत्मा और जीवन है। ये जलते हुए तुम्हारे मस्तिष्क में रास्ता बना लेंगे और तुम उन्हें छोड़ नहीं सकोगे।[६]

कोलम्बो से अल्मोड़ा –

पाम्बन, २६ जनवरी १८९७ : रामनाद के राजा साहब का मेरे प्रति जो प्रेम है, उसका आभार-प्रदर्शन मैं शब्दों द्वारा नहीं कर सकता।... मुझसे या मेरे द्वारा यदि कोई श्रेष्ठ कार्य हुआ है, तो भारतवर्ष उसके लिए राजा साहब का

ऋणी है; क्योंकि मेरे शिकागो जाने का विचार सबसे पहले राजा साहब के मन में ही उठा था, उन्हीं ने वह विचार मेरे सम्मुख रखा और उन्होंने ही इसके लिए मुझसे बार-बार आग्रह किया कि मैं शिकागो अवश्य जाऊँ।[७]

रामनाद, ३० जनवरी १८९७ : परिस्थितियाँ बड़े ही अद्भुत रूप से मेरे लिए अनुकूल होती जा रही हैं। कोलम्बो में मैंने जहाज छोड़ा तथा भारतवर्ष के दक्षिण स्थित प्राय: अन्तिम भूखण्ड रामनाद में इस समय मैं वहाँ के राजा का अतिथि हूँ। कोलम्बो से रामनाद तक एक विराट् जुलूस का आयोजन किया गया था, जिसमें हजारों व्यक्ति एकत्रित थे, रोशनी की गयी थी तथा अभिनन्दन-पत्र प्रदान किया गया। भारत की भूमि पर, जहाँ मैंने प्रथम पदार्पण किया, वहाँ पर ४० फुट ऊँचा एक स्मृति-स्तम्भ बनवाया जा रहा है। रामनाद के राजा साहब ने अपना अभिनन्दन-पत्र एक अत्यन्त सुन्दर नक्काशी किये हुए असली सोने के बड़े बाक्स में रखकर मुझे प्रदान किया है; उसमें मुझे His Most Holiness (महा-पवित्र-स्वरूप) कहकर सम्बोधित किया गया है। मद्रास तथा कलकत्ते में लोग बड़ी उत्कण्ठा के साथ मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, मानो सारा देश मुझे सम्मानित करने के लिए उठ खड़ा हुआ है। अत: ... मैं अपने भाग्य के उच्चत्तम शिखर पर आरूढ़ हूँ। फिर भी मेरा मन शिकागो के उन निस्तब्ध, विश्रान्तिपूर्ण दिनों की ओर दौड़ रहा है – कितने सुन्दर विश्रामदायक शान्ति तथा प्रेमपूर्ण थे वे दिन ![८]

एक बार मैं अनुराधापुरम (श्रीलंका) में व्याख्यान दे रहा था, हिन्दुओं के बीच में, बौद्धों के बीच में नहीं, वह भी खुले मैदान में, किसी की जमीन पर नहीं। इतने में ही दुनिया भर के बौद्ध – भिक्षु, गृहस्थ, स्त्री-पुरुष, ढोल-झाँझ आदि लेकर आये और ऐसी विकट आवाज करने लगे कि फिर क्या कहूँ ! लेक्चर तो वहीं रुक गया; नौबत खून-खराबी तक जा पहुँची। तब मैंने हिन्दुओं को अनेकों प्रकार से समझाया कि उन लोगों से अहिंसा का पालन नहीं होता, तो आओ हमीं लोग जरा अहिंसा दिखायें, तब जाकर शान्ति हुई।[९]

मैं समझता हूँ कि मुझमें अनेक दोषों के होते हुए भी थोड़ा साहस है।... आज का विषय आरम्भ करने के पूर्व मैं साहसपूर्वक दो शब्द तुम लोगों से कहना चाहता हूँ। कुछ दिनों से मेरे चारों ओर कुछ ऐसी परिस्थितियाँ खड़ी हो रही हैं, जो मेरे कार्य की उन्नति में विशेष रूप से विघ्न डालने की चेष्टा कर रही हैं; यहाँ तक कि यदि सम्भव हो, तो वे मुझे पूरी तौर से कुचलकर मेरा अस्तित्व ही नष्ट कर डालें। पर ईश्वर को धन्यवाद कि ये सारी चेष्टाएँ विफल हो गयी हैं; और इस तरह की चेष्टाएँ सदैव विफल ही सिद्ध होती हैं। मैं गत तीन वर्षों से देख रहा हूँ, कुछ लोग मेरे तथा मेरे कार्यों के विषय में कुछ भ्रान्त धारणाएँ बनाये हुए हैं। जब तक मैं विदेश में था, मैं चुप रहा; मैं एक शब्द भी न बोला। पर आज मैं अपने देश की भूमि पर खड़ा हूँ और स्पष्टीकरण के रूप में कुछ कहना चाहता हूँ। इन शब्दों का क्या फल होगा, या ये शब्द तुम लोगों के हृदय में किन-किन भावों का उद्रेक करेंगे, इसकी मैं परवाह नहीं करता। मुझे बहुत कम चिन्ता है; क्योंकि मैं वही संन्यासी हूँ, जिसने करीब चार वर्ष पूर्व अपने दण्ड-कमण्डलु के साथ तुम्हारे नगर में प्रवेश किया था और वही सारी दुनिया इस समय भी मेरे सामने पड़ी है।

... मैं मद्रास की समाज-सुधारक समितियों के बारे में कुछ कहूँगा।... इन संस्थाओं में से कुछ मुझे डराकर अपना सदस्य बनाना चाहती हैं। इनका ऐसा करना बड़े आश्चर्य की बात है। जो मनुष्य अपने जीवन के चौदह वर्षों तक लगातार फाकेबाजी का सामना करता रहा हो, जिसे यह भी न मालूम रहा हो कि दूसरे दिन का भोजन कहाँ से आयेगा, सोने के लिए स्थान कहाँ मिलेगा, उसे इतनी आसानी से धमकाया नहीं जा सकता। जो मनुष्य बिना कपड़ों के और बिना यह जाने कि दूसरे समय भोजन कहाँ से मिलेगा, उस स्थान पर रहा हो, जहाँ का तापमान शून्य से भी तीस डिग्री कम हो, वह भारत में इतनी सरलता से नहीं डराया जा सकता। यही पहली बात है, जो मैं उनसे कहूँगा – मुझमें अपनी थोड़ी दृढ़ता है, मेरा थोड़ा निज का अनुभव भी है और मेरे पास संसार के लिए एक सन्देश है, जो मैं बिना किसी डर के, बिना भविष्य की चिन्ता किये, सब को दूँगा। सुधारकों से मैं कहूँगा कि मैं स्वयं उनसे कहीं बढ़कर सुधारक हूँ। वे लोग केवल इधर-उधर थोड़ा सुधार करना चाहते हैं और मैं चाहता हूँ आमूल सुधार। हम लोगों का मतभेद है केवल सुधार की प्रणाली में। उनकी प्रणाली विनाशात्मक है और मेरी निर्माणात्मक। मैं सुधार में विश्वास नहीं करता, मेरा विश्वास स्वाभाविक उन्नति में है। मैं अपने को ईश्वर के स्थान पर प्रतिष्ठित कर अपने समाज के लोगों के सिर पर यह उपदेश मढ़ने का साहस नहीं कर सकता कि 'तुम्हें इसी भाँति चलना होगा, अन्य तरह नहीं।' मैं तो मात्र उस गिलहरी की भाँति होना चाहता हूँ, जो राम के सेतु बाँधने के समय अपने योगदान के रूप में थोड़ा-सा बालू लाकर ही सन्तुष्ट हो गयी थी। मेरा यही भाव है। ...

मैं मद्रास के समाज-सुधारकों से कहना चाहूँगा कि मुझमें उनके प्रति बड़ी श्रद्धा और प्रेम है। उनके विशाल हृदय, उनकी स्वदेश-प्रीति, पीड़ित और निर्धन के प्रति उनके प्रेम के कारण ही मैं उनसे प्यार करता हूँ। किन्तु जैसे भाई – भाई से स्नेह करता है और साथ ही उसके दोष भी दिखा देता है, ठीक वैसे ही, मैं उनसे कहता हूँ कि उनकी कार्यप्रणाली सही नहीं है। यह प्रणाली भारत में सौ वर्ष तक आजमायी गयी, पर वह सफल न हो सकी। अब हमें किसी नयी प्रणाली का

सहारा लेना होगा। ...

विदेशी संस्थाओं ने बलपूर्वक जिस कृत्रिम प्रणाली को हममें प्रचलित करने की चेष्टा की है, उनके अनुसार काम करना वृथा है। वह असम्भव है। जय हो प्रभु! हम लोगों को तोड़-मरोड़कर नये सिरे से दूसरे राष्ट्रों के ढाँचे में गढ़ना असम्भव है! मैं दूसरी कौमों की सामाजिक प्रथाओं की निन्दा नहीं करता। वे उनके लिए अच्छी हैं, पर हमारे लिए नहीं। उनके लिए जो कुछ अमृत है, हमारे लिए वही विष हो सकता है। पहले यही बात सीखनी होगी। अन्य प्रकार के विज्ञान, अन्य प्रकार के परम्परागत संस्कार और अन्य प्रकार के आचारों से उनकी वर्तमान सामाजिक प्रथा गठित हुई है। और हम लोगों के पीछे हमारे अपने परम्परागत संस्कार और हजारों वर्षों के कर्म हैं। अत: हमें स्वभावत: अपने संस्कारों के अनुसार ही चलना पड़ेगा; और हमें यह करना ही होगा।

तो फिर मेरी योजना क्या है? मेरी योजना है – प्राचीन महान् आचार्यों के उपदेशों का अनुसरण करना। ...

तुममें से अधिकांश जानते हैं, मैं धर्म-महासभा में भाग लेने के लिए अमेरिका नहीं गया था, वरन् एक भावना का दैत्य मुझ पर, मेरी आत्मा में सवार था। मैं पूरे बारह वर्ष सारे देश भर भ्रमण करता रहा, पर अपने देशवासियों के लिए कार्य करने का मुझे कोई रास्ता ही नहीं मिला। यही कारण था कि मैं अमेरिका गया। तुममें से अधिकांश, जो मुझे उस समय जानते थे, इस बात को भलीभाँति जानते हैं। इस धर्म-महासभा की कौन परवाह करता था? यहाँ मेरे देशवासी, मेरे ही रक्त-मांस-मय देह-स्वरूप मेरे देशवासी, दिन-पर-दिन डूबते जा रहे थे। उनकी कौन खबर ले? बस, यही मेरे कार्य का पहला कदम था।[१०]

मद्रास, १२ फरवरी १८९७ : आगामी रविवार को 'मोम्बासा' जहाज से मेरी रवाना होने की बात है। स्वास्थ्य अनुकूल न होने के कारण पूना तथा और भी अनेक स्थानों के निमन्त्रण अस्वीकृत करने पड़े। अत्यधिक परिश्रम तथा गर्मी के कारण स्वास्थ्य बिगड़ चुका है।[११]

आलमबाजार मठ, कलकत्ता, २५ फरवरी १८९७ : जुलूस, बाजे-गाजे तथा स्वागत-समारोहों के फलस्वरूप मेरी दशा ऐसी हो गयी है कि जैसा लोग कहते हैं – 'मरने का भी समय नहीं है'; इस समय मैं मृतप्राय हो चुका हूँ। (श्रीरामकृष्ण का) जन्मोत्सव समाप्त होते ही मैं पहाड़ की ओर भागना चाहता हूँ।... मैं क्लान्त हूँ और इतना अधिक क्लान्त हूँ कि यदि मुझे विश्राम न मिले, तो अगले छह महीने तक मैं जीवित रह सकूँगा या नहीं – इसमें भी मुझे सन्देह है।

इस समय मुझे दो केन्द्र खोलने हैं – एक मद्रास में और दूसरा कलकत्ते में।... इस देश में ईर्ष्यापरायण तथा निष्ठुर स्वभाव के लोगों की संख्या अत्यधिक है – वे लोग मेरे तमाम कार्यों को तहस-नहस कर धूल में मिलाने में कोई कसर नहीं उठा रखेंगे।

आप तो भलीभाँति जानती हैं कि बाधा जितनी अधिक होती है, मेरे अन्दर की भावना भी उतनी ही प्रबल हो उठती है। इन दोनों केन्द्रों को स्थापित करने से पूर्व यदि मेरी मृत्यु हो जाय, तो मेरे जीवन का व्रत अधूरा ही रह जायेगा।[१२]

मेरी इच्छा थी कि मेरे लिए खूब धूम-धाम हो। बात क्या है, जानते हो? थोड़ी धूम-धाम हुए बिना उनके (भगवान श्रीरामकृष्ण) नाम से लोग भला कैसे परिचित होंगे, भला उनसे कैसे प्रेरित होंगे? इतना स्वागत-सम्मान आदि क्या मेरे लिए हुआ है? नहीं, यह तो उन्हीं के नाम का जय-जयकार हुआ है। लोगों के मन में उनके बारे में जानने की कितनी इच्छा जाग्रत हुई है! लोग क्रमश: उन्हें जानेंगे, तभी तो देश का मंगल होगा। जो देश के मंगल के लिए आये हैं, उनको जाने बिना देश का मंगल कैसे होगा? उनको ठीक-ठीक जान लेने से 'मनुष्य' तैयार होंगे।... इसीलिये मेरी यह इच्छा हुई थी कि लोग मेरे लिए इस प्रकार की विराट् सभा आयोजित करें, खूब धूम-धाम हो; यह सब इसीलिए कि लोग भगवान श्रीरामकृष्ण को मानें; अन्यथा मुझे अपने लिए इतनी धूम-धाम की क्या जरूरत थी? क्या मैं पहले की अपेक्षा बड़ा आदमी हो गया हूँ! मैं जो पहले था, आज भी वही हूँ।[१३]

दार्जिलिंग, २६ मार्च १८९७ : मेरे स्वागत में जो प्रदर्शन हो रहे थे और राष्ट्रीय हर्षोल्लास मनाया जा रहा था, वे अब समाप्त हो चुके हैं – मुझे उन्हें बन्द कराना पड़ा, क्योंकि मेरा स्वास्थ्य बिलकुल टूट चुका था। पश्चिमी देशों में निरन्तर कर्म तथा भारतवर्ष में एक महीने के अथक परिश्रम के फलस्वरूप मेरे बंगाली शरीर पर 'मधुमेह' का प्रकोप हुआ। यह मेरा आनुवंशिक शत्रु है और बस, कुछ ही वर्षों में मुझे ले जाने वाला है।... मस्तिष्क को पूरा विश्राम देना ही जीवन की अवधि को बढ़ाने का एकमात्र उपाय है। दार्जिलिंग में मैं अपने मस्तिष्क को अपेक्षित विश्राम दे रहा हूँ।[१४]

दार्जिलिंग, ६ अप्रैल १८९७ : मेरे स्वागत में जो व्यय हुआ, उसके लिए धन-संग्रह करने हेतु कलकत्ता-वासियों ने मेरा व्याख्यान आयोजित किया और टिकट बेचे, फिर भी कमी रह गयी और खर्च चुकाने के लिए तीन सौ रुपये का एक बिल मेरे सामने पेश किया गया!![१५]

दार्जिलिंग, २० अप्रैल १८९७ : मेरा रोग पहले की अपेक्षा अब कुछ शान्त है – एकदम दूर भी हो सकता है – सब कुछ प्रभु की इच्छा पर ही निर्भर है।[१६]

दार्जिलिंग, २८ अप्रैल १८९७ : यह सारा देश मेरे स्वागत के लिए एकप्राण होकर उठ खड़ा हुआ। हर स्थान में

लाखों लोगों की जय-जयकार से विपुल कोलाहल मचा, राजाओं ने मेरी गाड़ी खींची, राजधानियों के मार्गों में जगह-जगह बड़े-बड़े स्वागत-द्वार बनाये गये, जिन पर शानदार आदर्श-वाक्य अंकित थे – आदि आदि !!!... परन्तु दुर्भाग्यवश इंग्लैण्ड में अत्यधिक परिश्रम से मैं पहले ही थका हुआ था और दक्षिण भारत की गर्मी में इस घोर परिश्रम ने मुझे बिलकुल ध्वस्त कर दिया। इसलिये मुझे भारत के दूसरे भागों में जाने का विचार छोड़ देना पड़ा और मैं शीघ्रातिशीघ्र सबसे निकट के पहाड़ अर्थात् दार्जिलिंग में आ गया। अब मैं पहले से काफी अच्छा हूँ और अल्मोड़ा में एक महीना और रहने के बाद पूर्णतया स्वस्थ हो जाऊँगा। ...

यूरोप आने का एक मौका मैंने अभी-अभी खो दिया है। राजा अजीतसिंह तथा कुछ अन्य राजा शनिवार को इंग्लैण्ड के लिए रवाना हो रहे हैं। उन्होंने बड़ी कोशिश की कि मैं भी उनके साथ जाऊँ। परन्तु दुर्भाग्यवश डॉक्टरों ने मुझे अभी किसी भी तरह के शारीरिक या मानसिक उद्योग करने से मना कर दिया। अत: बड़ी निराशा के साथ मुझे वह विचार छोड़ना पड़ा। अब मैंने उसे किसी निकट भविष्य के लिए रख छोड़ा है। ...

यह दार्जिलिंग एक रमणीय स्थान है। बादलों के हटने पर कभी-कभी देदीप्यमान कंचनजंगा (२८,१४६ फुट) का दृश्य दिखता है; और कभी-कभी एक समीपवर्ती शिखर से गौरीशंकर (२९,००२ फुट) की झलक दिख जाती है। फिर, यहाँ के लोग भी बड़े सुन्दर होते हैं – तिब्बती, नेपाली और सर्वोपरि रूपवती लेपचा स्त्रियाँ। क्या आप शिकागो के कोलस्टन टर्नबुल को जानती हैं? मेरे भारत पहुँचने से कुछ सप्ताह पहले से वे यहाँ आये थे। लगता है कि मैं उन्हें बहुत अच्छा लगा था, जिसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं को वह बहुत प्रिय हो गया था। ...

मेरे केश गुच्छे-के-गुच्छे सफेद हो रहे हैं और मेरे मुख पर चारों ओर से झुर्रियाँ पड़ रही हैं; शरीर का मांस घटने से मेरी आयु बीस वर्ष बढ़ी हुई दीखती है। ...

मैं यहाँ बड़े मजे में हूँ, क्योंकि शहरों में मेरा जीवन कष्टप्रद-सा हो गया था। यदि राह में मेरी झलक भी दिख जाती, तो तमाशा देखनेवालों का जमघट लग जाता था !! प्रसिद्धि में केवल दूध और शहद ही घुला हुआ नहीं मिलता !! अब मैं बड़ी-सी दाढ़ी रखनेवाला हूँ, जिसके बाल अब सफेद हो ही रहे हैं। इससे रूप पूजनीय हो जाता हैं और वह मुझे अमेरिकन निन्दकों से भी बचाता है। हे श्वेत केश, तुम कितना कुछ नहीं छिपा सकते ! धन्य हो तुम !![१७]

बागबाजार मठ, कलकत्ता, १ मई १८९७ : अनेक देशों में भ्रमण करने के बाद मुझे इस बात का निश्चय हो गया है कि बिना संघ के कोई भी बड़ा कार्य सिद्ध नहीं होता। ...

यह संघ उन श्रीरामकृष्ण के नाम पर स्थापित होगा, जिन के नाम पर हम संन्यासी हुए और आप सभी महानुभाव जिन को अपना जीवन-आदर्श मान गृहस्थाश्रम-रूप कार्यक्षेत्र में स्थित हैं; और जिनके देहावसान के १२ वर्ष के भीतर ही, प्राच्य तथा पाश्चात्य जगत् में उनके पवित्र नाम और अद्भुत चरित्र का विस्मयकर रूप से प्रसार हुआ है। हम सब प्रभु के दास हैं, आप लोग इस कार्य में मेरी सहायता कीजिए। ...

क्या कहा, यह सब कार्य श्रीरामकृष्ण के भावानुसार नहीं है? तुम क्या अनन्त भावमय गुरुदेव को अपने संकीर्ण दायरे में आबद्ध रखना चाहते हो? मैं इस सीमा को तोड़कर उनके भाव को दुनिया भर में फैलाऊँगा। श्रीरामकृष्ण ने मुझे कभी अपने पूजा-पाठ का प्रचार करने का उपदेश नहीं दिया। वे साधन-भजन, ध्यान-धारण तथा अन्य ऊँचे धर्मभावों के विषय में जो सारे उपदेश दे गये हैं, उन्हें पहले अपने में अनुभव कर फिर सर्वसाधारण को सिखलाना होगा। मत अनन्त हैं; पथ भी अनन्त हैं। सम्प्रदायों से भरे हुए जगत् में, एक और नया सम्प्रदाय बनाने के लिए मेरा जन्म नहीं हुआ। हम प्रभु के चरणों में आश्रय पाकर कृतार्थ हुए हैं। त्रिलोक-वासियों को उनकी भावराशि देने हेतु ही हमारा जन्म हुआ है।[१८]

सन्दर्भ-सूची – ❖ **(क्रमश:)** ❖

१. The Master as I saw Him, Sister Nivedita, सं.१९६२, पृ.९६-७; **२.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ५, पृ. २०३; **३.** वही, खण्ड ३, पृ. ३५५-५६; **४.** वही, खण्ड ३, पृ. ३१२; **५.** वही, खण्ड ५, पृ. ३७१; **६.** Swami Vivekananda in the West : New Discoveries, 1999, Vol 6, P. 57-88; **७.** वही, खण्ड २, पृ. ३७; **८.** वही, खण्ड ५, पृ. ४०६; **९.** वही, खण्ड ८, पृ. १७४-७५; **१०.** वही, खण्ड ५, पृ. १०२-१२१; **११.** वही, खण्ड ५, पृ. ४०७; **१२.** वही, खण्ड ६, पृ. ३०३; **१३.** वही, खण्ड ८, पृ. २५१; **१४.** The Complete Works of Swami Vivekananda, खण्ड ९, पृ. ३९; **१५.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ६, पृ. ३०८; **१६.** वही, खण्ड ६, पृ. ३०९; **१७.** वही, खण्ड ६, पृ. ३१५; **१८.** वही, खण्ड ६, पृ. ४५
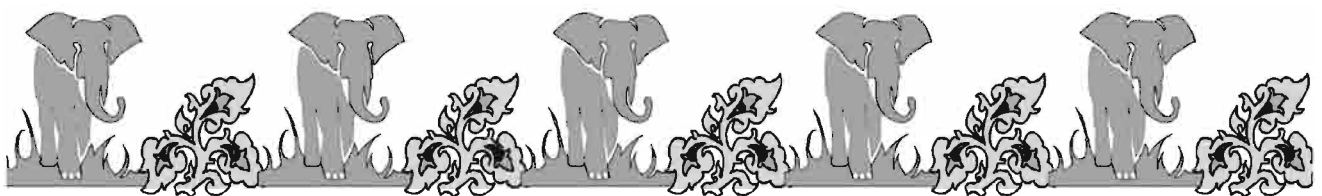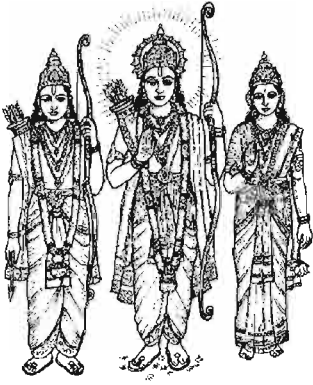
रामराज्य की भूमिका (७/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के प्रांगण में १९८८ ई. में आयोजित विवेकानन्द-जयन्ती के अवसर पर पण्डितजी ने जो प्रवचन दिये थे, उन्हें 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी ने किया है। – सं.)
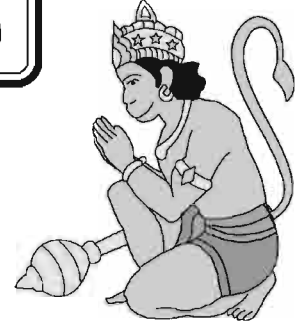
भगवान ने जब निषाद को मित्र कहकर सम्बोधित किया और पास में बैठा लिया, तो स्वयं निषाद के मन से हीनता की भावना मिट गई, तो अब यह प्रश्न ही कहाँ रह गया कि निषाद अस्पृश्य है। शूद्रजाति के निषादराज को भी प्रभु मित्र कहने में संकोच नहीं करते। भगवान ने उनसे कहा – पिता ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं चौदह वर्ष वन में रहूँ, किसी ग्राम या नगर में न जाऊँ, इसलिए मैं तुम्हारे गाँव में नहीं जा सकूँगा। इसके बाद केवट-प्रसंग आता है। कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि क्या निषादराज और केवट – दो हैं या एक ही हैं। दोनों ही के पक्ष में तर्क है। कई वाक्य ऐसे भी मिलते हैं कि दोनों दो हैं और कई वाक्य ऐसे भी हैं कि दोनों एक हैं।

मेरे विचार में, निषादराज और केवट दो व्यक्ति हैं या एक, यह प्रश्न उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। पर भगवान की जो प्रक्रिया है, वह दोनों मिलाकर एक ही सूत्र बनाती है। वह प्रक्रिया क्या है? भगवान जब गंगा के किनारे आकर खड़े होते हैं, और केवट से कहते हैं कि मुझे पार उतार दो, तो केवट ने क्या कहा? केवट ने प्रभु से आड़ी-टेड़ी बातें कहीं। प्रभु को बाध्य किया। केवट ने जो-जो कहा, प्रभु ने वैसा-वैसा ही किया और अन्त में केवट ने प्रभु को पार उतारा। पार उतारने के बाद केवट ने प्रभु के चरणों में प्रणाम किया। इधर प्रभु को संकोच लगा कि मैंने तो इसे कुछ नहीं दिया –

केवट उतरि दंडवत कीन्हा।
प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा ।। २/१०१/२

संसार में प्राय: जितने राज्य हैं, वहाँ एक ही झगड़ा है। काम करनेवाले को शिकायत है कि मुझे कुछ नहीं मिलता और देनेवाला समझता है कि मैंने बहुत अधिक दिया, इसकी माँग ही बढ़ती जा रही है। पर यहाँ अनोखी बात है। भगवान ने अपना चरण – अपना पद दे दिया। यह सांकेतिक भाषा है। उसे ब्रह्म का चरण-पद मिला। प्रभु के चरणों से केवट ने अपने पुरखों को पार उतारा और भगवान को इसके बाद भी संकोच लगा कि मैंने इसे कुछ नहीं दिया। किसी ने प्रभु से पूछा – आपने केवट को चरण तो दे दिया, फिर यह संकोच क्यों कि आपने कुछ नहीं दिया? प्रभु बोले – आपने केवट की बातों पर ध्यान नहीं दिया! उसने तो पहले ही कहा था कि मुझे चरण की कोई आवश्यकता नहीं है। आपको पार जाना हो, तो आप स्वयं मुझसे चरण धोने के लिये कहिए, तभी धोऊँगा। इसलिये मुझे उतराई तो देनी ही चाहिए और चरण धोवाई अलग से देनी चाहिए, क्योंकि इसने कृपा करके चरण भी धो दिये। चरण धोने की माँग उसकी नहीं, बल्कि मेरी आवश्यकता थी। यह प्रभु का शील है, संकोच है कि उन्हें लगता है कि मैंने कुछ नहीं दिया। और श्रीसीताजी ने? भक्तिदेवी के अन्त:करण में लगा कि कुछ तो इस केवट को देना ही चाहिए, तो उन्होंने अपनी मुद्रिका – बहिरंग अर्थों में वह सोने तथा मणि से निर्मित है और दूसरी ओर आध्यात्मिक दृष्टि से उस पर राम-नाम भी अंकित है। भक्ति के द्वारा जो सबसे बड़ी वस्तु दी जा सकती है, वह भगवान का नाम ही है। भक्तिदेवी जब प्रसन्न हुई, तो उन्होंने कहा – प्रभु से बड़ा तो प्रभु का नाम ही है, तो केवट को यह नाम ही दिया जाना चाहिए। पर केवट बड़ा अनोखा निकला – मुद्रिका व्यावहारिक और आध्यात्मिक – दोनों ही दृष्टियों से बड़ी मूल्यवान है, पर केवट ने भगवान से कहा – महाराज, आज मैंने क्या नहीं पा लिया! मेरे जीवन में दोष, दुख और दरिद्रता की जो दावाग्नि जल रही थी, वह बुझ गयी। मेरे जीवन में न दोष रह गया, न दुख और न दरिद्रता ही रह गयी –

नाथ आजु मैं काह न पावा।
मिटे दोष दुख दारिद दावा ।। २/१०१/५

यहाँ केवट के मुँह से पहली बार रामराज्य की व्याख्या हुई, वही रामराज्य का सूत्र है। किसी ने पूछा – प्रभु ने तो कुछ दिया ही नहीं, तो तुम्हारी दरिद्रता कैसे दूर हो गई? केवट बोला – पहले मैं अपने आपको दरिद्र समझता था और दरिद्र तो अपने से बड़ों के सामने हाथ फैलाता ही रहता है। श्रीराम आये, तो मुझे लगा कि शायद ये मुझसे कहेंगे – केवट, जो तुम्हें चाहिए, तुम मुझसे माँग लो। परन्तु प्रभु जब गंगा के किनारे खड़े हुए और मुझसे नाव माँगने लगे कि 'केवट, नाव ले आओ', तो मैंने सोचा कि 'अरे, मैं तो व्यर्थ ही अपने आपको दरिद्र समझता था, जब सबको देनेवाला मुझसे माँग रहा है, तो मुझसे बड़ा भला कौन हो सकता है? और जब सबको पार उतारने वाला मेरी कृपा से पार उतरेगा,

तो फिर मेरी दरिद्रता कहाँ रही? यह बात बार-बार कही गई है ईश्वर ही जीव को पार करते हैं, पर जब ईश्वर ही केवट से पार उतारने को कहता है, तो केवट को लगा – प्रभो, जब आपने मुझसे नाव माँग लिया, तो उसी क्षण मेरी दरिद्रता समाप्त हो गई। और दु:ख? केवट बोला – दु:ख भी मेरे जीवन में था। वह भी दूर हो गया।

भगवान जब अयोध्या से आए और सुमन्तजी जब उनसे विदा लेने लगे, तो घोड़ों को रोते देख प्रभु के मुख पर भी विषाद की रेखा आ गई। उनका वह दु:ख कब दूर हुआ? – जब उन्होंने गंगातट पर केवट से बात की, तो खूब हँसे –

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन।। २/१००

अयोध्या में वे कभी भी नहीं बिहँसे, मिथिला में कभी नहीं बिहँसे, पर गंगातट पर केवट की बात सुनकर हँसे और खूब हँसे, खुलकर हँसे। केवट ने कहा – प्रभो, जब आप हँसने लगे, तो मुझे लगा कि सबको सुख बाँटने वाला आज मेरे द्वारा कहे गये वाक्यों से आनन्दित हो रहा है, तो यदि मैं ईश्वर को सुखी बना सकता हूँ, तो मेरे जीवन में दु:ख कहाँ से आ सकता है? और दोष? – मेरे दोष भी मिट गये।

लोग कहते थे कि निषाद के छूने से व्यक्ति अपवित्र हो जाता है, पर भगवान ने कहा, 'बेगि आनहु' – जल्दी से जल ले आओ और चरण धोकर पार उतार दो। केवट बोला – प्रभो, आप तो मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं, यह बताइए कि जो लोग पार उतरने के लिये पहले से बैठे हैं, पहले उन्हें पार उतारना चाहिए या बाद में आए हुए को? प्रभु ने कहा – जो पहले से बैठे हैं, उन्हें ही पहले उतारना चाहिये, पर मेरे पहले तो यहाँ कोई दिखाई नहीं दे रहा है। केवट बोला – कृपा करके उधर दृष्टि डालिए, हमारे पितर बहुत बड़ी संख्या में पार उतरने के लिए खड़े हैं। पहले इनको उतार लूँगा, तभी आपको उतारूँगा।

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार।२.१०१

प्रभो, लोग कहते थे कि पाप के परिणाम-स्वरूप निषाद बनना पड़ता है, कहते थे – मैं पापी हूँ, अपवित्र हूँ, मुझे छूने से लोग अपवित्र हो जाते हैं, पर जब मैंने पुरखों को भी उतार दिया और ईश्वर को भी पार उतार दिया, तो क्या मेरे जीवन में कहीं दोष का लेश मात्र भी रह गया है। और अब इतना सब पा लेने के बाद भी मेरे लिये क्या कुछ पाना बाकी है?

सीताजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बोलीं – यह तो ठीक है कि तुम्हारे जीवन से दोष-दुख और दरिद्रता दूर हो गये, पर यह मुद्रिका – यह रामनाम तो अमूल्य है। केवट ने कहा – प्रभो, नाम की इस मुन्दरी को लेने में भी मुझे संकोच है। – क्यों? – नाम की मुन्दरी तो उसे चाहिये, जिसे आपके नाम का जप करना हो, परन्तु मैं तो नाम का जप नहीं कर सकूँगा, आप ही मेरे नाम का जप कर लिया करें और यह मुन्दरी भी अपने पास ही रखिए।

सचमुच ही भगवान बीच-बीच में केवट के नाम का जप कर लेते हैं, वे बार-बार केवट का स्मरण करते हैं। सामाजिक सन्दर्भ में उसका अभिप्राय यह हुआ कि भगवान श्रीराम ने समाज के सबसे नीचे कहे जानेवाले व्यक्ति को भी इतना सम्मान दिया, उसे इतना ऊपर उठाया कि उसके जीवन से दोष, दु:ख और दरिद्रता दूर हो गये।

जो कभी सुधरना नहीं चाहते, उनके पास बहुत-से बहाने होते हैं। उनके पास वाक्यों की कमी नहीं है। वे कहते हैं – श्रीराम ने केवट को भले ही हृदय से लगा लिया, पर **न देवचरितं चरेत –** देवताओं के आचरण का अनुगमन नहीं करना चाहिए। हमारे एक प्रसिद्ध विद्वान् थे, बड़े अच्छे साधु भी थे। किसी ने कह दिया – श्रीराम ने तो निषाद को हृदय से लगा लिया। वे बोले – बाद में नहा लिया होगा। तो ये लोग निषाद को हृदय से लगाने के बाद श्रीराम को नहलाए बिना नहीं छोड़ते। वे लोग कहेंगे – ईश्वर की बात ईश्वर के साथ, हम क्यों वैसा करें?

दूसरी ओर भरतजी की यात्रा क्या है? सामाजिक सन्दर्भ में भगवान के इस कार्य को परिपूर्णता देने का भार भरतजी पर है। श्रीराम ने ईश्वर के रूप में जो कार्य किया, वही कार्य भरतजी भी करके भगवान राम के द्वारा किये हुए कार्य को सामाजिक मान्यता दिला देते हैं।

भरतजी की यात्रा शुरू होती है। वे भी शृंगवेरपुर पहुँचे। निषादराज ने सुना, पर उनका दैन्य तथा दोष कितने मिट चुके हैं। इतना बड़ा सम्राट् सेना लेकर आ रहा है। निषाद के मन में भय होना चाहिए था – चलूँ, मैं भी चलकर भरतजी का स्वागत करूँ। पर निषादराज अपने गाँव के लोगों को बुलाकर कहते हैं – युद्ध के बाजे बजाओ, हम भरत से युद्ध करेंगे – जीते-जी उन्हें गंगा पार नहीं उतरने देंगे –

सनमुख लोह भरत सन लेऊँ।
जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ।। २/१८९/२

– भरतजी श्रीराम के भाई व राजा हैं; इस क्षणिक देह से श्रीराम का कार्य करते हुए गंगाजी के तट पर युद्ध में उनके हाथों इस नीच सेवक की मृत्यु – यह तो बड़े भाग्य की बात है –

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा।
राम काजु छनभंगु सरीरा।।
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू।
बड़ें भाग असि पाइअ मीचू।। २/१८९/३-४

बोला – मैं स्वामी के कार्य हेतु रण में युद्ध करूँगा और श्रीराम के निमित्त प्राण देकर सभी लोकों को अपने यश से उज्ज्वल

कर दूँगा। मेरे तो दोनों ही हाथों में आनन्द के लड्डू हैं –

स्वामि काज करिहउँ रन रारी ।
जस धवलिहउँ भुवन दस चारी ।।
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें ।
दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें ।। २/१९०/१-५

यह दिव्य-ओजस्वी भाव, जिसे मृत्यु का रंचमात्र भी भय नहीं है, जिसे राजा का कोई आतंक नहीं है, जिसमें कोई प्रलोभन नहीं है – निषाद ऐसा मुक्त हो चुका है, भगवान राम के स्पर्श से बिल्कुल बदल चुका है। गोस्वामीजी ने दोनों मान्यताओं का अन्तर भी दिखाया है। निषादराज जिस समय युद्ध की तैयारी कर रहे थे, तभी उन्हें छींक आ गई। किसी वृद्ध ने कहा – युद्ध नहीं होनेवाला है। निषादराज बोले – ठीक है ! तो हम पहले भरत को परखेंगे। निषादराज भरत जी के सामने जाते हैं। निषादराज ने गुरु वशिष्ठ को देखा और उन्हें दूर से प्रणाम किया। इस सन्दर्भ में, जो प्रचलित धारणा थी, निषादराज का आचरण उसी के अनुकूल था और गुरु वशिष्ठ ने यह सोचकर कि यह भगवान राम का प्रिय है, उसे आशीर्वाद दिया। वशिष्ठजी के अन्त:करण में भी उदारता की वृत्ति है और वे उदारता से आशीर्वाद देते हैं, पर उससे आगे नहीं बढ़ते। अब भगवान राम ने रामराज्य की स्थापना की जो यात्रा प्रारम्भ की थी, उसे परिपूर्णता प्रदान करने की भूमिका भरतजी की है। आशीर्वाद देने के बाद गुरु वशिष्ठ ने भरतजी को समझाते हुए कहा – इनका नाम गुह है, ये जाति के निषाद हैं और ये तुम्हारे श्रीराम के मित्र हैं –

जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा ।
भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा ।। २/१९३/६

भरतजी ने, न जाति का शब्द सुना और न नाम का – गोस्वामीजी कहते हैं – तीनों में दो को उन्होंने कोई महत्त्व नहीं दिया। पर श्रीराम का मित्र है – इतना सुनते ही भरतजी, जो देश के सम्राट् हैं, रथ से उतरकर निषाद की ओर दौड़े –

राम सखा सुनि संदनु त्यागा ।
चले उतरि उमगत अनुरागा ।। २/१९३/७

उन्हें दण्डवत करते देखकर भरतजी ने उन्हें उठाकर सीने से लगा लिया। उन्हें ऐसा लगा मानो वे लक्ष्मणजी को हृदय से लगाकर मिल रहे हों –

करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयँ समाइ।।२/१९३

इसके बाद भरतजी ने निषादराज से पूछा – कहिए कुशल से हैं? निषादराज बोले – महाराज, यह पूछना क्या बाकी है? – क्यों? बोले – जिसको देखकर आप रथ का परित्याग कर दें, उसकी स्थिति क्या होगी? निषादराज ने ये ही शब्द कहे। कहा – महाराज, पुराना मेरा परिचय अलग था। – क्या? – मैं कपटी, कायर, कुबुद्धि और कुजाति माना जाता था। समाज ने हम लोगों को यही उपाधि दे रखी थी। मैं लोक और वेद – दोनों से हर तरह से बाहर था। परन्तु अब वे सब पुरानी बातें हो गई हैं। जब से भगवान श्रीराम ने मुझे अपनाया है, तभी से मैं विश्व का आभूषण हो गया हूँ –

कपटी कायर कुमति कुजाती।
लोक बेद बाहेर सब भाँती।।
राम कीन्ह आपन जबही तें।
भयउँ भुवन भूषन तबही तें।। २/१९६/१-२

राम का मित्र होने के बाद से मैं संसार का आभूषण हो गया। तभी तो आप रथ से उतरकर मुझसे मिलने के लिये मेरे पास चले आए। भरतजी भावविह्वल हो गये और अयोध्या के नागरिक भी उत्साह में भरकर निषाद प्रशंसा करते हुए कहने लगे – जीवन का लाभ तो इन्होंने ही पाया है, जिन्हें श्री रामभद्र ने भुजाओं में बाँधकर हृदय से लगाया है, जिन्हें श्रीभरत ने हृदय से लगाया है, उन्हें हम सभी – हर व्यक्ति हृदय से लगा ले। माताओं को प्रणाम किया, तो उन्होंने भी उन्हें लक्ष्मण के रूप में ही देखा –

कहहिं लहेउ एहिं जीवन लाहू ।
भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू ।। २/१९६/८
जानि लखन सम देहिं असीसा ।
जिअहु सुखी सय लाख बरीसा ।। २/१९६/५

भरतजी के साथ ही अयोध्या के नर-नारियों ने भी उन्हें लक्ष्मणजी के रूप में देखा। इस यात्रा का मूल अभिप्राय यह है कि इसमें रामराज्य के सारे पक्ष हैं – आध्यात्मिक पक्ष और व्यावहारिक पक्ष। व्यावहारिक पक्ष में श्रीराम की इस यात्रा में महामुनियों से मिलन है और उसी की पराकाष्ठा चित्रकूट में गुरु वशिष्ठ और निषाद का मिलन है। दूसरी ओर यह यात्रा, आध्यात्मिक साधना की भी यात्रा है। इस यात्रा में चित्रकूट की भूमि पर जीव और ब्रह्म की एकता का अद्वितीय मिलन होता है और दोनों ही दृष्टियों से यह परिपूर्णता सम्पन्न होने पर रामराज्य की स्थापना होती है। श्रीभरत ने इस यात्रा में रामराज्य का जो चित्र प्रस्तुत किया और चित्रकूट में जिसकी अन्तिम परिणति हुई, आगे हम उसी की चर्चा करेंगे।

❖ (क्रमशः) ❖

आत्मविश्वास की शक्ति

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिये विविध विषयों पर अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे थे, जो उसके विभिन्न केन्द्रों द्वारा प्रसारित किये गये तथा लोकप्रिय भी हुए। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, रायपुर से साभार गृहीत हुआ है। – सं.)

कहा जाता है कि हमें आस्थावान बनना चाहिए, पर प्रश्न उठता है – आस्था किसके प्रति? अपने या ईश्वर के प्रति आस्थाहीनता को नास्तिकता भी कहते हैं। स्वामी विवेकानन्द इस नास्तिकता की एक नयी व्याख्या करते हैं – "Old religion said – he was an atheist who did not believe in god, new religion says – he is an atheist who does not believe in himself." – "पुराने धर्मों ने कहा कि वह नास्तिक है, जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता। नया धर्म कहता है कि वह नास्तिक है, जो अपने आप में विश्वास नहीं करता।" स्वामीजी का मन्तव्य यह था कि जो अपने आप में विश्वास नहीं करता, उसका ईश्वर में विश्वास करना कोई मायने नहीं रखता। वे तो कहते थे कि यदि तुम तैंतीस कोटि देवताओं में विश्वास करते हो तथा उनमें भी जो विदेशियों द्वारा यहाँ लाये गये हैं, पर अपने आप में विश्वास नहीं करते, तो यह विश्वास किसी काम का न होगा।

जीवन में सबसे बड़ा पाठ आत्मविश्वास का है। विवेकानन्द यह भी कहा करते थे कि बचपन में और कुछ न पढ़ाकर यदि आत्मविश्वास का ही पाठ पढ़ाया जाए, तो वह व्यक्ति के लिए महान् कल्याणकर होगा। हममें अनन्त सम्भावनाएँ निहित हैं, हमारे भीतर वह अनन्त शक्तिधर ब्रह्म ही छिपा है। पर हममें विश्वास की कमी है, इसीलिए हमारे भीतर का सुप्त शक्तिदेव जागता नहीं। आत्मविश्वास ही वह रसायन है, जो मनुष्य को अन्तरिक्ष चीरकर चन्द्रमा पर जाने की क्षमता प्रदान कर रहा है। विज्ञान के आविष्कार, जो बीते कल असम्भव से प्रतीत होते थे, आत्मविश्वास के ही फल हैं।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि विश्व का इतिहास उन इने-गिने लोगों ने बनाया, जिनका अपने आप में, अपनी क्षमता में दृढ़ विश्वास था। वे लोग यह मानते थे कि वे महान् होने के लिए ही पैदा हुए हैं, इसीलिए वे महान् बने।

यदि मनुष्य में आत्मविश्वास हो, तो समुद्र भी गोखुर में समाये जल के जैसे पार करने में सहज हो जाता है और यदि उसकी कमी हो, तो गोष्पद-जल भी दुर्लंघ्य हो जाता है।

आत्मविश्वास की साधना कठिन नहीं है। रात्रि में सोते समय और सुबह उठते ही अपने भीतर यह भाव उठाना चाहिए कि मुझमें असीम शक्ति है, मेरा अन्त:करण अनन्त शक्ति का भण्डार है, मेरे रास्ते की बाधाएँ दूर होकर ही रहेंगी, मुझे अपना अभीप्सित लक्ष्य अवश्य प्राप्त होगा। इस चिन्तन का बारम्बार आवर्तन आत्मविश्वास को पुष्ट करेगा। हमारा मन नवीन शक्ति और दृढ़ता का अनुभव करेगा।

केवल एक सावधानी रखनी होगी कि आत्मविश्वास कहीं अभिमान की वृत्ति को न जगा दे। यह स्मरण रखना होगा कि अहंकार या अभिमान आत्मविश्वास का पर्याय नहीं है। वास्तव में अहंकार मनुष्य के भीतरी बल को बढ़ाने के स्थान पर उसका क्षय ही अधिक करता है। सच्चा आत्म-विश्वासी व्यक्ति निरहंकारी होता है। ❑❑❑

साहसी बनो, बलवान बनो, आत्मविश्वासी बनो

* विश्वास ! स्वयं पर विश्वास, परमात्मा में विश्वास – यही महानता का एकमात्र रहस्य है। यदि पुराणों में कथित तैंतीस करोड़ देवताओं और विदेशियों द्वारा लाये हुए समस्त देवताओं पर भी तुम्हारा विश्वास है, परन्तु अपने आप पर विश्वास नहीं है, तो तुम कदापि मोक्ष के अधिकारी नहीं हो सकते। अपने आप पर श्रद्धा करना सीखो। इसी आत्मश्रद्धा के बल से अपने पैरों पर खड़े हो जाओ और बलवान बनो। जिसमें आत्मविश्वास नहीं, वही नास्तिक है।

* यह एक महान् सत्य है कि बल ही जीवन है और दुर्बलता ही मृत्यु है। बल ही अनन्त सुख है, अमर और शाश्वत जीवन है और दुर्बलता ही मृत्यु है। बचपन से ही मस्तिष्क में सकारात्मक, सबल तथा उपयोगी विचार प्रविष्ट हो जायँ। सर्वदा अपने मन को ऐसे विचारों के लिए खुला रखो। – ***स्वामी विवेकानन्द***

सारगाछी की स्मृतियाँ (१०)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराज जी के साथ हुये वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और ब्रह्मचारी बोधमय चैतन्य ने किया है, जिसे विवेक ज्योति के पृष्ठों में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – संपादक)

प्रश्न – क्या शंकराचार्य जी में चारों योग थे?

उत्तर – हाँ, शंकराचार्य जी तो ज्ञानी और योगी थे। उन्हें बौद्धों के साथ संघर्ष करना पड़ा था। बौद्ध लोग तार्किक थे। इसलिये उन्होंने ज्ञान-मार्ग को सर्वश्रेष्ठ निरूपित करना पड़ा था। शंकराचार्य जी के द्वारा मन्दिर और देव प्रतिष्ठा तथा उनके द्वारा रचित स्तव स्तोत्र पढ़ कर देखो, वे कितने बड़े भक्त थे ! ठाकुर ने कहा है कि जैसे हाथी के दो प्रकार के दाँत होते हैं, वैसे ही श्रीचैतन्य देव के भीतर ज्ञान था और बाहर में भक्ति थी।

सेवक – क्या तोतापुरी जी में चारों योग थे?

महाराज – तोतापुरी जी में भी चारों योग थे। किन्तु वे जानते नहीं थे, इसलिये उन्हें ठाकुर जी से सीखना पड़ा।

२५-५-१९५९

शिलॉग से सौम्य महाराज ने दो ब्रह्मचारियों को भेजा है। (एक हैं परवर्ती काल में पूजनीय स्वामी प्रमेयानन्द जी महाराज, जो हमारे संघ के भूतपूर्व उपाध्यक्ष थे। दूसरे अमेरिका में हैं – स्वामी भास्करानन्द जी महाराज।) महाराज जी शाम को वरामदे में टहलते हुए उन लोगों से कह रहे हैं – "देखो, जैसे गणित, बनाते-बनाते गणित में रुचि हो जाती है, वैसे ही, ईश्वर की बातों को बार-बार पढ़ने से ईश्वर में अनुराग, प्रेम होता है। किन्तु देखा जाता है कि बहुत से लोग ज्ञान की बातें पढ़ते-पढ़ते, पढ़ने में ही आनन्द प्राप्त करने लगते हैं और मुख्य उद्देश्य को भूलकर उसी में ही फँस जाते हैं। यदि बचपन से ही (आत्म-विकास) का द्वितीय भाग पढ़ाया जाय, तो बहुत से दु:खों का नाश हो जायेगा। जितने दु:ख हैं, सभी वासना से ही हैं, इसलिये "विहाय कामान् य: सर्वान्।"

एक ब्रह्मचारी – हम लोग तो केवल कर्म ! कर्म ! करते रहते हैं। ईश्वर को न जानकर कर्म का क्या मूल्य है?

महाराज – ईश्वर को जानना बहूत दूर की बात है। कर्म करना पड़ता है। कर्म नहीं, बल्कि सेवा बोलो। हम लोग सबकी ईश्वर-बोध से सेवा करेंगे। नहीं तो, आसक्ति हो जायेगी। इस तरह कर्म करने से कोई हानि नहीं होगी।

२६-०५-१९५९ (सुबह ८.३० बजे)

उत्तर दिशा के बरामदे में महाराज जी ईजी चेयर में बैठे हुये हैं। सेवक लोग वृत्ताकार में बैठे हुये हैं एवं साथ में शिलॉग के दो ब्रह्मचारी बैठे हुये हैं।

ब्रह्मचारी – हमलोगों को कैसे रहना होगा, इसे अच्छी तरह से लिख कर रखना चाहिये। नहीं तो, विभिन्न प्रकार के साधुओं को देखता हूँ, कुछ भी समझ में नहीं आता है।

महाराज – सही बात है, साधु विभिन्न प्रकार के होते हैं – तमोगुणी, रजोगुणी, और सत्त्वगुणी। ठाकुर ने तमोगुणियों को भी हाथ जोड़कर प्रणाम किया था, नहीं तो वह अभिशाप दे देगा। रजोगुणी की रुचि कर्म करने में होती है। सत्त्वगुणी सुख का अनुभव करता है। गीता पढ़े रहने से ठीक पहचान में आ जाता है, एवं लक्ष्य भी ठीक रहता है।

ब्रह्मचारी – हमलोगों के वस्त्रादि कैसे रहने चाहिये?

महाराज – हमलोगों को मध्य मार्ग को अपनाना चाहिये। बाहर से समझ में नहीं आने देना कि तुम कठोर साधना कर रहे हो। किन्तु बाबूगीरी भी नहीं करना। सांसारिक विषयों में अधिक ध्यान मत देना। वास्तविक लक्ष्य केवल ईश्वर प्राप्ति है। इसके लिए ही सभी कार्य हैं।

ब्रह्मचारी – अर्थात् ईश्वरोन्मुखी होकर चलना होगा। समाज में कौन क्या कहा, उस पर ध्यान नहीं देना चाहिये, यही तो?

महाराज – नहीं, हमलोग समाज में रहते हैं। हमलोगों को कुछ सामाजिक व्यवहार भी मान कर चलना होगा। अर्थात् नाव को गन्तव्य-स्थल में ले जाना होगा। थोड़ा इधर से मुड़कर, थोड़ा उधर से घुमकर, कभी सीधा, कभी तिरछा होकर किसी तरह से थोड़ी-सी जगह बनाकर बगल से चले जाना होगा। नहीं तो, धक्का-मुक्की होगी और धक्का-मुक्की टकराहट होते ही सब कुछ समाप्त हो जायेगा। हमेशा लक्ष्य और साधन का ध्यान रखना होगा। हमलोग साधन पर ध्यान ही नहीं देते। हम ईश्वर के मार्ग में चल रहे हैं या नहीं, इस पर ध्यान देना चाहिये।

ब्रह्मचारी – महाराज, इन सबके सम्बन्ध में सावधान नहीं रहने से ही तो पतन होगा ?

महाराज – नहीं, हम लोग तो कोई पतन नहीं देखते हैं, चलते-चलते जो भेड़ा पीछे हो जाता है, वह केवल बाद में अधिक तेज चलने के लिये ही होता है। शायद इस जन्म में

पतन हुआ है, ऐसा लगता है, किन्तु दूसरे जन्म में दुगुने उत्साह से बहुत जल्दी से आगे बढ़ जाओगे।

अभी हम लोगों का कार्य बहुत बढ़ गया है। किन्तु चारों योगों में समान रूप से दृष्टि नहीं रहने से किसी भी तरह विकास नहीं होगा।

३-६-१९५९

आज प्रेमेश महाराज जी स्वस्थ हैं। वे बहुत देर तक टहलते रहे। सेवक ने पूछा – ''महाराज, क्या आपने कभी क्रोध किया है? उन्होंने कहा – ''हाँ'' बचपन में पूजा करता था, एकदिन जाकर देखा पूजा की सामग्री नहीं है, घर की लड़कियाँ ही व्यवस्था करके रखती थीं। क्रोध में रो पड़ा था। इसके अतिरिक्त भी कई बार नाराज हुआ हूँ।''

सेवक – क्या आपने किसी को कष्ट दिया है?

महाराज – ढाका आश्रम में दिया हूँ। कार्य कर रहा था, ऐसे Odd time व्यस्त समय में एक भिखारी ने कुछ माँगा और मैंने कहा था – अभी नहीं मिलेगा, जाओ।

बहरमपुर में एक महाराज जी का घर है। वहाँ पर उनकी माँ रहती हैं। वे महाराज जी एक बार घर में आये, तो माँ के पास न खाकर, मास्टर के घर में भोजन किये थे।

प्रेमेश महाराज – माँ की बात अलग है। हमलोगों के ठाकुर जी ही तो माँ के लिये ही वृन्दावन छोड़कर चले आये थे। क्या माँ के पास खाने से दोष होता?

किसी दूसरे प्रसंग में महाराज ने कहा –''अधिक बहिर्मुखी होने से अंतिम समय में स्थिर होकर बैठ नहीं सकोगे। तुमलोग तो बड़े भाग्यशाली हो। मुझे आनन्दमय कोष समझने में कितना कष्ट हुआ था, तुम लोगों को भी होगा। जो भी यहाँ आया है, वह जीवन्मुक्त होगा।

गीत को समझने का अर्थ है, बहुत गंभीर विचार को जानना। रवीन्द्रनाथ टैगोर के गीतों में इतने उत्कृष्ट भव्य विचार हैं कि सामान्य व्यक्ति समझ ही नहीं सकता। जितना भी ज्ञान-विचार करो, किन्तु इसे याद रखो कि श्रीरामकृष्ण के प्रति प्रेम के बिना कुछ भी होने वाला नहीं है। वे ही सत्य हैं। उन्हीं के लिये इतना विचार है।

४-६-१९५९

शाम को प्रेमेश महाराज जी ने कहा – ''एक बात सुनो! तुम लोग तो साधु होने के लिये आये हो। किसी से किसी प्रकार भी वशीभूत नहीं होना।''

सेवक – महाराज जी, क्या आप बचपन से ही कविता लिखते थे?

महाराज – नहीं। बड़ा होकर युवास्था से लिखना शुरु किया। 'कृत्यं करोति कलुषं।' कविता का नशा तो ठाकुर जी की ओर ही चला गया। यह शरीर तो अयोग्य था। जिस परिवेश में जन्म हुआ था, उसमें कोई भी मुझे पढ़ने के लिये नहीं कहता था। अपनी ही इच्छा से स्कूल में टोल में जाता था। पहले स्कूल में प्रणाम नहीं करता था। गुरु-वंश के होने के कारण शिक्षक पढ़ाना नहीं चाहते थे। मैं तो बहुत दिनों के बाद श्रीरामकृष्ण के सान्निध्य में आकर अब्राह्मण को भी प्रणाम करने लगा।

सेवक – आपने ठाकुर जी के बारे में कैसे जाना?

महाराज – वह एक आश्चर्यजनक घटना है ! कैसे क्या हुआ, कुछ भी समझ नहीं सका। 'बसुमती' आदि स्वतन्त्रता-संग्राम के समाचार पत्र में स्वामी विवेकानन्द जी का नाम पढ़ता था। यह १९०५ ई. की बात है श्रीअरविन्द के लेख में श्रीरामकृष्ण के बारे में जानकारी मिली। उनके बारे में और अधिक जानने की इच्छा हुई। मेरे एक मित्र ने कहा कि 'वचनामृत' नामक पुस्तक में श्रीरामकृष्ण की बातें हैं। उसे पढ़ने के बाद मैं भाव-विभोर हो गया। मैं Enterance उच्च-माध्यमिक उत्तीर्ण कर चुका था। घर के लोग एवं पड़ोसियों के दबाव के कारण कानून की पढ़ाई करने लगा। जीवन को कैसे बिताऊँगा, इसके बारे में मुझे विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ। देखा, साधना को छोड़कर तो जीवन बड़ा भयंकर है।

बहुत दिन बाद बेलूड़ मठ के साधुओं के बारे में जानकारी मिली। तीन पैसे का पोस्टकार्ड लिखकर मास्टर महाशय के पास उपस्थित हुआ। उन्होंने उद्बोधन में माँ के पास भेज दिया। वहाँ जाकर माँ को प्रणाम किया, संभवत: उनके चरणों में सिर रखा था। मैंने कोई बात नहीं की। नीचे आने पर एक साधु ने मिठाई प्रसाद दिया था।

मैं दो मित्रों के साथ गया था। उन लोगों ने माँ के सम्बन्ध में कहा – लगता है अन्तिम जन्म है, इसलिये श्रीरामकृष्ण देव की पत्नी के रूप में जन्म ली हैं। उस समय तो मैं इतना समझता नहीं था। सोचा, शायद ऐसा ही होगा।

❖ **(क्रमशः)** ❖

कर्म की अद्भुत गति (पूर्वार्ध)

स्वामी जपानन्द

(रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी जपानन्दजी के कुछ संस्मरणों तथा कई पुस्तकों 'प्रभु परमेश्वर जब रक्षा करें', 'मानवता की झाँकी', 'आत्माराम की आत्मकथा', 'काठियावाड़ की कथाएँ' आदि का हम धारावाहिक प्रकाशन कर चुके हैं। कुछ नागपुर मठ से ग्रन्थाकार छप भी चुकी हैं। उन्होंने पाली भाषा की 'कर्म' शीर्षक एक बौद्ध गाथा पर आधारित एक पुस्तिका लिखी थी, प्रस्तुत है उसी का स्वामी विदेहात्मानन्द कृत हिन्दी रूपान्तरण। – सं.)

– १ –

बहुत दिनों पहले की बात है। उन दिनों दल-के-दल बौद्ध भिक्षुगण इस पुण्यभूमि भारत में विचरण किया करते और आम जनता को भगवान बुद्ध द्वारा प्रदर्शित शन्तिमय निर्वाण के पथ पर चलाने के प्रयास में लगे रहते। भारतवर्ष उन दिनों विद्या-बुद्धि, बल तथा ऐश्वर्य – सभी विषयों में उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच चुका था। उन दिनों भारतवासियों के घर में पर्याप्त अन्न, मन में तृप्ति, हृदय में शान्ति और जीवन सदाचार से युक्त था। सत्य तथा नीति ही उनके व्यवहार का मापदण्ड था। धनी, मानी, ज्ञानी लोगों का कोई अभाव न था; दया, दान और संयम का सम्मान था; परोपकार को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था और त्याग तथा सेवा ही राजा-प्रजा के लिये एकमात्र आचरणीय आदर्श था। राजा तथा धनाढ्य व्यवसायी लोग धर्म तथा भिक्षुसंघ की सेवा में मनोनियोग करते। करोड़ों रुपये खर्च करके मन्दिर, मठ, संघाराम आदि का निर्माण होता। लोगों में इष्ट-पूर्ति आदि धर्मार्थ कार्यों में रुचि थी; सर्व प्रकार की विद्या सीखने में आग्रह था; उद्योगपूर्ण कर्मों में उत्साह था; और भिक्षु तथा राजा लोग जनता को दैहिक तथा मानसिक दु:खों के हाथ से छुटकारा दिलाने के उपायों के चिन्तन में व्यस्त रहते। इस कालखण्ड को बौद्धधर्म का मध्याह्न-काल कहा जा सकता है। हम इसी काल की एक कथा सुनाने जा रहे हैं –

वाराणसी के पथ पर एक सुन्दर इक्का गाड़ी वायु वेग से चली जा रही थी। उसमें दो जन ही सवार थे सईस और उसके मालिक सेठजी। सेठजी के चेहरे-मोहरे तथा वस्त्र-आभूषण से उनका व्यक्तित्व अभिव्यक्त हो रहा था। उनका उत्सुक मुख-मण्डल देखकर लग रहा था कि वे अपने गन्तव्य स्थान को पहुँचने के लिये विशेष व्यग्र हैं। वे अपने सईस को और भी वेगपूर्वक, और भी तेजी से गाड़ी हाँकने को कह रहे थे। घोड़े तीर के वेग से दौड़े चले जा रहे थे।

थोड़ी देर पूर्व ही थोड़ी वर्षा हो चुकी थी। रास्ता कच्चा था। उस पर कहीं-कहीं कीचड़ भी हो गया था और कहीं-कहीं थोड़ा पानी भी जमा हो गया था। ठण्डी हवा बड़ी सुखद लग रही थी और मानसिक तथा दैहिक थकान को घटा रही थी। सूर्यदेव अब भी काफी ऊपर थे, तथापि वायुमण्डल की नमी ने उनके तेज को घटा दिया था। चारों ओर फैले हरे-भरे खेत अपूर्व शोभा धारण करके देखनेवालों को मोहित कर रहे थे। प्रकृति देवी मानो आनन्द से उत्फुल्ल हो रही थीं।

एक बौद्ध भिक्षु रास्ते के बगल से होकर, अपने पावों के नख पर दृष्टि जमाये हुए धीर कदमों से वाराणसी की ओर चले जा रहे थे। उनके शरीर की आभा पवित्र तथा तेजोदीप्त थी, मुख-मण्डल से तृप्ति तथा शान्ति प्रकट हो रही थी और उस पर एक अपूर्व ज्ञान की गम्भीरता छाई हुई थी।

सेठजी ने दूर से ही उन्हें देख लिया था। गाड़ी उनके पास पहुँचते ही सेठजी के मन में उनके प्रति श्रद्धा एवं पूज्यता का भाव उदय हुआ। उनके मन में आया, "निश्चय ही ये कोई धर्मज्ञ महापुरुष हैं। विद्वज्जन कहते हैं कि सज्जनों का संग पारस-मणि के समान है। जैसे पारस-मणि अपने स्पर्श से लोहे को सोने में परिणत कर देता है, वैसे ही मनुष्य भी सज्जन के स्पर्श से भला बन जाता है और अभागा भाग्यवान हो जाता है। सम्भवत: ये भी वाराणसी की ओर ही जा रहे हैं; पूछ कर देखूँ यदि ये कृपा करके मेरी गाड़ी में आ जायँ, तो फिर उनके सत्संग से मेरा कुछ लाभ ही होगा।"

ऐसा सोचकर सेठजी ने गाड़ी रुकवायी और उनके पास जाकर हाथ जोड़े निवेदन किया, "महाशय, आप सम्भवत: काशी जा रहे हैं, मैं भी वहीं जा रहा हूँ; यदि आप अनुग्रह करके मेरी गाड़ी में चलें, तो मुझे बड़ी खुशी होगी।"

भिक्षु – "सेठजी, मैं आपका कृतज्ञ हूँ। बड़ी दूर से चलते-चलते मुझे थकान का बोध हो रहा था। आपने मुझे अपनी गाड़ी में जगह देकर मुझे अपना ऋणी बना लिया। परन्तु मैं ठहरा साधु-संन्यासी, मेरे पास कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे देकर मैं आपके ऋण से मुक्त हो सकूँ। मेरे पास तो केवल भगवान बुद्ध के उपदेशों का जरा सा बोध मात्र है। सो उसी में से आपकी इच्छानुसार कुछ देकर मैं अपने ऋण का बोझ कुछ हल्का करना चाहता हूँ।"

सेठजी यह सुनकर बड़े ही आनन्दित हुए और भिक्षु के मुख से नि:सृत निर्वाणप्रद अमृतमयी बुद्ध-वाणी को एकाग्र चित्त से सुनने लगे। उनका मन संसार के पंकिल विषयों से काफी ऊपर उठ गया और वे उन प्रेमिक साधु की हर उक्ति को आग्रहपूर्वक अपने हृदय में सँजोने लगे।

"ऐ, गाड़ी हटाओ, एक तरफ हो जाओ!" – सेठजी चिल्ला उठे। माल से भरी हुई एक बैलगाड़ी रास्ते के बीच में खड़ी थी। सड़क वहाँ पर थोड़ा सँकरा होने के कारण बगल

से होकर निकलने की जगह नहीं थी। गाड़ी का एक चक्का निकल गया था। गाड़ीवान उसे यथासाध्य चढ़ाने का प्रयास कर रहा था, परन्तु किसी प्रकार सफल नहीं हो पा रहा था। वह अत्यन्त परेशान हो चुका था। गाड़ी में चावल के बोरे भरे हुए थे, वर्षा के कारण मिट्टी गीली हो गयी थी और वह अकेला था, अत: उसे किसी से सहायता पाने की उम्मीद नहीं थी। फिर शाम होने के पूर्व ही उसे अपनी मंजिल पर पहुँचना भी जरूरी था।

''अरे मूर्ख, जल्दी गाड़ी हटा !'' – देरी होते देखकर सेठजी बोल उठे, परन्तु उसकी सहायता करने के लिये कोई उतरा नहीं। ''मैं कहता हूँ, जल्दी हटा !'' वे पुन: चिल्लाये।

गाड़ीवान देवल बोला, ''गाड़ी का चक्का निकल गया है, उसे चढ़ा नहीं पा रहा हूँ। थोड़ा-सा धैर्य रखिये सेठजी !''

परन्तु देरी हो रही थी, इसलिये सेठजी का पारा चढ़ता जा रहा था। उन्होंने अपने चालक को आदेश दिया, ''इसकी गाड़ी के बोरों को नीचे फेंक करके गाड़ी को किनारे कर दे !'' उनके आदेश के अनुसार कार्य शुरू हुआ। देवल ने बहुत अनुनय-विनय किया – गीली जगह में रखने से चावल बरबाद हो जायेंगे, मैं एक गरीब किसान हूँ, मेरा बहुत बड़ा नुकसान हो जायेगा, आदि आदि। परन्तु सेठजी का मन जरा भी नहीं पिघला। चावल के सारे बोरे नीचे फिकवाने के बाद बैलगाड़ी को एक किनारे खिंचवा कर अपने घोड़ेगाड़ी के लिये रास्ता साफ करा लिया और अपने चालक को खूब तेजी से गाड़ी चलाने का आदेश दिया।

हाय रे, इस संसार में गरीब का कोई हमदर्द नहीं। अपनी थोड़ी-सी सुख-सुविधा के लिये प्रभावशाली और सम्पन्न लोग प्राय: ही इसी तरह दुर्बलों के प्रति निष्ठुर आचरण किया करते हैं ! इस प्रकार कितने ही तरह के अनुचित अत्याचार हुआ करते हैं। इन लोगों के हृदय में कितनी वेदना भरी है, इसकी खबर कितने लोग रखते हैं ! ये लोग एकान्त में कितना अश्रुपात किया करते हैं ! उनके कुटीरों के कोने उनकी कितनी गहरी साँसों से परिपूर्ण रहते हैं, वह क्या सब लोग जान पाते हैं? भगवान बुद्ध सम्भवत: उन्हीं के दु:खों से व्यथित होकर अपने राजसुख का परित्याग करके, दु:ख-निवारण के उपाय – दु:खों के नाश का मार्ग ढूँढ़ने निकल पड़े थे ! कदाचित् इसी कारण इस दु:ख-निवृत्ति की बात ही उनके धर्म-प्रचार का प्रमुख अंश था। अपने किये हुए कर्मों का फल सबको भोगना ही पड़ेगा, कोई भी बच नहीं सकेगा, इसीलिये उन्होंने भले कर्मों का उपदेश दिया था; और इसी कारण किसी का भी – एक क्षुद्र प्राणी के कष्ट देखकर भी द्रवित हो उठते थे।

देखने में आता है कि उन धर्मचक्र-प्रवर्तन वाले दिनों में भी आज ही की भाँति धनमद तथा बलमद से मतवाले लोगों का अत्याचार आम बात थी। थोड़ा-सा कम या ज्यादा का ही भेद था। जिन लोगों पर दीन-दुर्बलों की रक्षा और निर्धनों की सहायता करने का उत्तरदायित्व था, वे उन दिनों भी इसी प्रकार भक्षक के कार्य में लिप्त थे। परन्तु दिलाशा की बात बस इतनी ही थी कि भगवान बुद्ध के नाम पर सर्वत्यागियों की टोली करुणा का सन्देश लेकर गाँव-गाँव और नगर-नगर में सर्वत्र विचरण किया करती थी; और प्रेमपूरित हृदय के साथ दीन-हीनों के दु:ख मिटाने के लिये सतत प्रयत्नशील रहा करती थी। सम्पूर्ण मानव-जाति के कल्याण-चिन्तन और दीन-दुखियों की सहायता में लगे हुए ये श्रमण-संन्यासी उन दिनों सूक्ष्म धर्मतत्त्व के जटिल प्रश्नों को लेकर वाद-विवाद में समय बिताने की अपेक्षा लोकहित के कार्यों में थोड़े अधिक उत्साही थे और तन-मन तथा वाणी से ऐसे ही कार्यों में व्यस्त रहा करते थे। उनके प्रेमार्द्र हृदय की संवेदना तत्काल ही संसार-ज्वाला शान्त कर देती थी। उन लोगों के स्नेहपूर्ण हाथों का स्पर्श अत्याचारियों के क्रूर आघातों से उत्पन्न दैहिक तथा मानसिक पीड़ा को दूर कर देती और सबके हृदय में क्षमा और शान्ति का राज्य स्थापित हो जाता।

''गाड़ी रोको, चालक, गाड़ी रोको !''

''सेठजी, क्षमा कीजियेगा, आपके साथ मेरा जाना नहीं हो सकेगा। मैं यहीं उतर जाना चाहता हूँ। आपने मेरा जो उपकार किया है, उसके प्रत्युपकार का मौका प्राप्त हुआ है, आपके ऋण से मुक्त होने का यह अवसर मैं छोड़ नहीं सकता। मेरी थकान दूर हो चुकी है, अब मैं पैदल चलकर जा सकूँगा। धन्यवाद !'' इतना कहकर श्रमण नारद इक्के-गाड़ी से नीचे उतर पड़े।

सेठजी – ''मैं समझ नहीं सका कि आप गाड़ी से उतरकर किस प्रकार मेरे ऋण से मुक्त होंगे ! आपको अभी-अभी कौन-सा सुयोग मिला है, जानकर मुझे बड़ी खुशी होगी।''

श्रमण – ''अभी-अभी जिस किसान की गाड़ी को एक ओर खिसका कर रास्ता खाली किया गया है, वह मेरा बड़ा अपना आदमी है। उसकी थोड़ी-सी सहायता करके आपके ऋण से मुक्त होने की इच्छा से मैं नीचे उतर गया। मेरी मदद से उस किसान का जो थोड़ा-सा उपकार होगा, वह एक तरह से आपके ही निमित्त से ही होने के कारण, इस पुण्यकर्म का फल आपको ही प्राप्त होगा। आपने इस गरीब किसान का बड़ा नुकसान किया है, अत: मेरा कर्तव्य है कि आपके इस अनुचित कर्म के फल से आपकी रक्षा हेतु यथासम्भव प्रयास करूँ। आपके कल्याण हेतु ही मैं इस किसान की थोड़ी सहायता करना चाहता हूँ। वस्तुत: आपके तथा इस किसान के कर्म इस समय गूढ़ रूप से जुड़ गये हैं, दोनों के भाग्यों के

बीच एक सूक्ष्म संयोग स्थापित हो गया है। अत: मैं ऐसा कुछ प्रयास करूँगा, जिससे आप दोनों का ही कल्याण हो।''

परन्तु सेठजी के मन पर इन बातों का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। संसार के व्यवहार से अनजान इन संन्यासी की ज्ञानपूर्ण बातें सुनने में तो अच्छी लगती हैं – ऐसा सोचते हुए वे अपनी गाड़ी में सवार होकर आगे निकल पड़े।

– २ –

श्रमण नारद तेजी से उस किसान के पास गये और उसकी गाड़ी के चक्के को चढ़ाने और अनाज के बोरों की फिर से लदाई करने में उसकी सहायता करने लगे। जो बोरे थोड़े-थोड़े भीग गये थे, उनमें से गीले अनाज को अलग निकाल कर फिर उनकी सिलाई में भी मदद करने से किसान का कार्य बहुत जल्दी पूरा हो गया और वह फिर से गाड़ी में सवार होकर वाराणसी के मार्ग पर चल पड़ा। किसान देवल सोचने लगा – मेरे किसी भाग्योदय के कारण ही श्रमण-वेशधारी कोई देवता मेरी सहायता करने चले आये। वे यदि सहायता न करते, तो इस निर्जन स्थान में भला कौन इस संकट की घड़ी में मेरा उद्धार करने आता।

बातचीत के दौरान देवल बोला, ''महाराज, मैंने उन सेठजी को कोई क्षति नहीं पहुँचायी, तो भी क्यों उन्होंने अकारण ही मेरा इतना नुकसान किया?''

श्रमण – भाई, कारण बस इतना ही है कि तुम्हें अपने ही किसी पुराने दुष्कर्म का फल भोगना पड़ा है।

देवल – कर्म क्या है, महाराज?

श्रमण – स्थूल दृष्टि से किसी भी क्रिया को 'कर्म' कहते हैं। बहुत-से जन्मों में किये हुए कर्मों के संचित फल मानो एक माला के समान है; जिसका प्रत्येक मनका विविध कर्मों के भिन्न-भिन्न प्रकार के मणि के समान है। वर्तमान कर्म के द्वारा उसमें परिवर्तन सम्पन्न होता है। हम लोगों के मन में जो विचार आते हैं, उनके द्वारा भी बहुत-से परिवर्तन – पूर्वकृत कर्मों में सक्रियता आती है। इस समय जिन भले-बुरे फलों का भोग हो रहा है, उन्हें तुम अपने पूर्वकृत कर्मों का फल समझना और वर्तमान काल में जो कुछ कर रहे हो या सोच रहे हो, इनका फल बाद में भोग करना होगा।

देवल – सम्भव है कि ऐसा ही हो। परन्तु ऐसा अहंकारी दुष्ट व्यक्ति मेरे जैसे निरपराधों पर जो इस प्रकार अत्याचार करता है, इसके निवारण का क्या उपाय है?

श्रमण – भाई, मुझे तो लग रहा है कि तुम्हारा विचार भी लगभग उन सेठ के समान ही है। जिन कर्मों के फलस्वरूप वह एक जौहरी और तुम एक किसान हुए हो, बाह्य दृष्टि से तो उनमें काफी भेद दिख रहा है, परन्तु थोड़ी गहराई तक दृष्टि डालने पर इतना भेद नहीं दिखेगा। कर्म के सूक्ष्म सूत्र आपस में बड़े घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। खैर, जाने दो, पर मैं मानवीय स्वभाव के अपने अनुभव से कहता हूँ कि यदि आज उस जौहरी की जगह पर तुम होते और तुम्हारी गाड़ी का रास्ता इस प्रकार किसी की गाड़ी से रुद्ध हो जाता, तो तुम भी ठीक उस जौहरी के समान ही आचरण करते। तुम्हारी बुद्धि में यह बात जरा भी नहीं आती कि इससे अनाज बरबाद हो जायगा और तुम्हारे भी ध्यान में यह नीतिवाक्य नहीं आता कि दूसरों का नुकसान करने से अपनी भी उतनी ही हानि होती है! क्यों, मैं ठीक कह रहा हूँ न?

देवल – महाराज, आप सही कह रहे हैं। इस समय मेरी जो मनोवृत्ति है, उससे तो वैसी परिस्थिति में पड़ने पर मैं भी ठीक वैसा ही आचरण करता। परन्तु सौभाग्यवश मुझे आपका जो दर्शन मिला है, उसका कुछ शुभ फल तो होगा ही। पहली बात तो यह कि आपकी नि:स्वार्थ सहायता से मैं अपने अनाज को बचाने में समर्थ हुआ और गाड़ी भी चलने योग्य हो सकी। इससे थोड़ा ज्ञान भी हुआ कि मेरी ही तरह कोई संकट में पड़ा हो, तो उसकी मदद करना उचित है।

इसी प्रकार बातचीत तथा चर्चाओं के साथ-साथ गाड़ी चली जा रही थी। तभी दोनों बैल ठिठक कर ठहर गये। कारण का पता लगाने पर देवल ने देखा कि सड़क के बीच में लम्बे साँप के जैसा कुछ पड़ा हुआ है। वह बोला, ''महाराज, साँप के जैसा यह क्या पड़ा हुआ है?''

श्रमण नारद ने उसके साथ पास जाकर देखा कि 'कमर में बाँधने की' रुपयों की एक थैली बीच सड़क पर पड़ी है। उन्होंने उसे उठाकर भीतर देखा, तो वह सोने की गिन्नियों से भरी हुई थी। उन्हें लगा कि यह जरूर उन्हीं सेठजी की होगी।

वे किसान से बोले, ''देवल, वाराणसी पहुँचकर सबसे पहले उन सेठजी की खोज करना और उन्हें यह थैली दे देना। यह जरूर उन्हीं की थैली है। उनका नाम पाण्डु जौहरी है और उनके इक्के-चालक का नाम महादत्त है। जब तुम उन्हें यह थैली दोगे, तो उन्हें तुम्हारे प्रति दुर्व्यवहार की बात याद आयेगी और उन्हें पश्चाताप होगा। उन्हें यह थैली देकर कहना, 'सेठजी, आपने मेरे प्रति जो दुर्व्यवहार किया था, उसके लिये मेरे मन में कोई द्वेषभाव नहीं है; मैंने आपको क्षमा कर दिया है। मैं आपकी उन्नति की कामना करता हूँ।' मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारा भाग्य भी उस सेठ के साथ ही जुड़ा हुआ है; उसकी उन्नति से तुम्हारी भी उन्नति होगी।''

इतना कहकर त्यागमूर्ति श्रमण नारद तेज कदमों से अपने गन्तव्य मार्ग पर चले गये। राह चलते हुए वे सोच रहे थे – यदि एक बार फिर उस जौहरी से मुलाकात हो, तो उसके कल्याण के लिये प्रयत्न करेंगे और यही कामना करते रहेंगे कि वह सच्चे मनुष्यत्व का अधिकारी बने।

– ३ –

वाराणसी में मल्लिक नामक एक वणिक चावल का व्यवसाय करता था। वह उसी पाण्डु जौहरी का आढ़तदार था। उस दिन पाण्डु से भेंट होते ही वह रोते हुए बोल उठा, "भाई, मैं एक महा संकट में पड़ गया हूँ। मैंने कल राजा को उनके स्वयं के उपयोग के लिये कुछ चावल देने का वचन दिया है, परन्तु आज अभी तक एक दाने की भी व्यवस्था नहीं हो सकी है। क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आ रहा है। बाजार में मेरे कई प्रतिस्पर्धी हैं, उन्हें कहीं से इस बात की जानकारी हो गयी है और उन लोगों ने बाजार का सारा अच्छा चावल अपने गोदाम में भर लिया है। तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि उन लोगों ने सारा चावल मुँहमाँगी कीमत चुका कर खरीदी है। लगता है कि उन लोगों ने घूस देकर राजा के कोठारी से साँठगाँठ कर ली है, नहीं तो उन लोगों को राजा के साथ में अनुबन्ध की बात कैसे ज्ञात होती? खैर, कल यदि मैं उन्हें चावल नहीं दे सका, तो मेरा सारा व्यापार बरबाद हो जायगा। क्या तुम कोई ऐसा उपाय कर सकते हो, जिससे मेरा सम्मान बच जाय या फिर मैं इस संकट से उद्धार पा सकूँ? ईश्वर की कृपा से यदि दो-एक गाड़ी अच्छा चावल इसी समय मिल जाता, तो कितना अच्छा होता!"

मल्लिक की बात सुनते-सुनते पाण्डु को अपने खुद के रुपयों के थैली की याद आयी। वे तत्काल अपनी गाड़ी में गये और जल्दी-जल्दी उसमें और अपने सारे सामान को उलट-पलट कर देखने लगे। बारम्बार खोजने पर भी उन्हें अपने रुपयों की थैली नहीं मिली। उन्हें सन्देह हुआ कि कहीं उनके सेवक महादत्त ने ही तो उसे नहीं चुरा लिया है! उन्होंने तत्काल पुलिस को बुला भेजा। पुलिस ने तत्काल महादत्त को पकड़ लिया और उसके बाद जैसा कि प्राय: हुआ करता है – अपराध को स्वीकार कराने की प्रक्रिया के रूप में – उसकी अच्छी पिटाई होने लगी। महादत्त खूब रोने-चिल्लाने लगा, हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा कि वह निर्दोष है, उसने रुपयों की थैली नहीं चुराई है, परन्तु किसी ने भी उस पर विश्वास नहीं किया।

तब उसे उस किसान की याद आयी और वह उच्च स्वर में बोल उठा, "हे भगवान, मैं अपने पाप की सजा पा रहा हूँ। इन सेठ के कहने पर उस निर्दोष गरीब किसान को बिना कारण ही हानि पहुँचायी थी और उसके मन को जो कष्ट दिया था, यह उसी कर्म का समुचित फल भोग रहा हूँ। हे जगदीश, मुझे क्षमा करो, ऐसी भूल दुबारा कभी नहीं करूँगा।"

फिर वह उस किसान की याद करके उसके प्रति कहने लगा, "भाई देवल, तुम मुझे क्षमा करो। तुम्हें अकारण कष्ट देने के फलस्वरूप ही मैं आज पूरी तौर से निर्दोष होकर भी दण्डित हो रहा हूँ। मेरे जैसे निर्दयी व्यक्ति के साथ ऐसा होना उचित ही है।" आदि कहते हुए वह फूट-फूटकर रोने लगा, परन्तु सेठजी या पुलिस के पास उस पर ध्यान देने की इच्छा या समय न था। उन लोगों को तो किसी भी प्रकार से उससे कबूल करवाना था कि चोरी उसी ने की है।

परन्तु महादत्त का हार्दिक पश्चाताप उसका सहायक सिद्ध हुआ और ठीक उसी समय किसान देवल स्वर्ण-मुद्राओं की थैली लिये हुए वहाँ आ पहुँचा; और पाण्डु सेठ के समक्ष उसे रखते हुए बोला, "यह थैली मुझे रास्ते में पड़ी हुई मिली है, सम्भवत: आपकी ही होगी!"

थैली पाकर सेठजी एक साथ ही आनन्द, लज्जा तथा खेद से अभिभूत हो उठे। जिस व्यक्ति के प्रति उन्होंने ऐसा अनुचित आचरण किया था, उसी के द्वारा इस प्रकार उपकृत होने और निर्दोष सेवक महादत्त को दण्ड दिलवाने की बात सोचकर सेठजी को अपार खेद होने लगा। वे जितना ही किसान देवल के प्रति अपने अन्यायपूर्ण आचरण की बात सोचने लगे, उतना ही उनका हृदय पश्चाताप की अग्नि से दग्ध होने लगा और लज्जा से उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी। उधर अपने सेवक महादत्त पर भी झूठा सन्देह करते हुए उस पर चोरी का आरोप लगाकर उसके लिये जो कठोर दण्ड का विधान किया गया था, वह कार्य अत्यन्त गर्हित हुआ है – यह बोध भी उनके हृदय को दंशित करने लगा।

आखिरकार उन्होंने देवल से क्षमा माँगी और देवल ने भी – जो महापुरुष के संगगुण से उदार तथा निर्मल बुद्धि से युक्त हो चुका था – सेठजी को हृदय से क्षमा करते हुए उनकी उन्नति की कामना की। महादत्त को पुलिस ने छोड़ तो दिया, परन्तु उसके हृदय में बदले की आग भड़क चुकी थी और वह तत्काल वह स्थान छोड़कर चला गया।

उधर मल्लिक को जब एक गाड़ी चावल आने का समाचार मिला, तो वह भागा हुआ आया और चावल की अच्छी किस्म देखकर उसे ऊँचे दर पर खरीद लिया। मल्लिक के सम्मान की रक्षा हुई। देवल को भी इस सौदे में इतना लाभ हुआ, जिसकी उसने सपने में भी कल्पना नहीं की थी। उसके आनन्द की सीमा न रही। अपने सद्भाव का प्रत्यक्ष फल पाकर उसने अपने हृदय में सदैव सद्भाव रखने का संकल्प किया और अपने घर लौट आया।

सेठजी के मन में पक्का विश्वास जम गया कि उन श्रमण के सत्संग के फलस्वरूप ही सबका इस प्रकार अकल्पनीय रूप से कल्याण हुआ है। किसान देवल चाहता, तो मोहरों की थैली को अपने पास ही रख लेता! उसके न आने से बेचारे महादत्त को बिना दोष के ही, और भी न जाने कितनी सजा भोगनी पड़ती! यह सब कुछ उन महात्मा की कृपा से ही हुआ है – यह सोचकर सेठजी नगर के सारे मठों तथा विहारों में उनकी खोज करने लगे। ❖ **(क्रमशः)** ❖
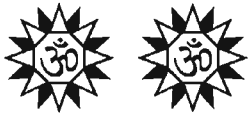
स्वामी प्रेमानन्द के संग में (३२)
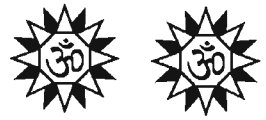
(बाबूराम महाराज के नाम से सुपरिचित स्वामी प्रेमानन्दजी श्रीरामकृष्ण देव के एक प्रमुख शिष्य थे। वे बेलूड़ मठ के सर्वप्रथम व्यवस्थापक थे। वे मठ के मन्दिर में पूजा भी किया करते थे। बँगला भाषा में हुई उनकी धर्म-चर्चाओं को स्वामी ओंकारेश्वरानन्द लिपिबद्ध कर लेते थे और बाद में उन्हें ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित भी कराया था। 'विवेक-ज्योति' के पाठकों के लाभार्थ उसी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

३. तिब्बत-भ्रमण की कहानी

आज १८ मार्च, १९१६ ई. का दिन है। संध्या के समय मठ के दक्षिणी ओर के गेस्ट हाउस (अतिथि-निवास) के छत पर पूजनीय गंगाधर महाराज आसीन हैं। ब्रह्मचारी ब्रह्मचैतन्य, गोकुल महाराज तथा अविनाश महाराज भी उनके पास बैठे हुए हैं। उस भवन का निर्माण-कार्य अब भी पूरा नहीं हुआ है। कमरे की कड़ियों तथा छत के शहतीरों पर रंग किया जा रहा है। बरामदे और छत के ऊपर के कमरे में पलस्तर करना अभी बाकी है।

ठाकुर की संध्या-आरती आरम्भ हुई। झाँझ की सुमधुर ध्वनि छत पर सुनाई दे रही है। आरती के बाद स्तवपाठ हुआ। शुक्लपक्ष की चाँदनी रात है।

गोकुल महाराज – (पूजनीय गंगाधर महाराज के प्रति) आपने तिब्बत आदि का काफी भ्रमण किया है, वहाँ की थोड़ी-बहुत बातें कहिए।

गंगाधर महाराज – "बंगाल के सीधे उत्तर में तिब्बत की राजधानी लासा है और पंजाब के उत्तर की ओर मध्य तिब्बत है। मैं मध्य तिब्बत गया था। पहले मैंने लासा की ओर से जाने का प्रयास किया, परन्तु जाने नहीं दिया गया। इसीलिए पश्चिम के लद्दाख झील की ओर से गया था। लद्दाख झील काश्मीर राज्य के ही अन्तर्गत पड़ता है।

"उस समय अग्रहायण का महीना था। भयानक ठण्ड थी। शरीर से स्पर्श होते ही पानी जम जाता था। वहाँ का ऐसा नियम था कि किसी विदेशी के आते ही उसे गवर्नर से मिलना पड़ता था। मैंने भी उनके साथ भेंट की। मुझे साधु देखकर और यह जानकर कि मैं अंग्रेजी, बँगला, संस्कृत तथा थोड़ी-थोड़ी तिब्बती भाषा भी जानता हूँ, उन्होंने मेरा स्वागत किया और एक सम्मानित अतिथि के रूप में अपने घर में ही रखा। मुझे वस्त्र आदि का भी जो कुछ अभाव था, वह सब भी उन्होंने दिया।

"वहाँ के संयुक्त-कमिश्नर एक अंग्रेज थे। उनके एक शिक्षक थे, जो उन्हें उर्दू और फारसी पढ़ाया करते थे। उस समय अंग्रेज साहब वहाँ नहीं थे। जाड़े के दिनों में वे सियालकोट चले जाते थे। गवर्नर मुसलमान थे और अंग्रेज सरकार का बड़ा भय मानते थे। इसीलिए वे संयुक्त-कमिश्नर की खुशामद किया करते थे। मुसलमान गवर्नर भी उन शिक्षक की मुट्ठी के भीतर थे। साहब उनकी बात मानते थे न, इसीलिए!

"खैर, गवर्नर के यहाँ मुझे बड़े यत्न से रखा गया था। दो-तीन दिनों बाद उन्होंने मुझसे कहा – अब मैं आपको अपने घर में नहीं रख सकूँगा; आप किसी धर्मशाले में चले जायँ। मैं उनके घर से चला गया। मेरे साथ काश्मीर जानेवाले और भी सात परिव्राजक ठहरे हुए थे। गवर्नर ने मुझे भी उन लोगों के साथ काश्मीर जाने को कहा, क्योंकि इतने ठण्ड में धर्मशाले में निवास करने से मेरी मृत्यु हो सकती थी। सुना कि शिक्षक ने गवर्नर को धमकाते हुए कहा था, 'ये कोई विदेशी आदमी हैं, बाहर से साधु का वेश बनाये हुए हैं; इनका जरूर कोई राजनीतिक उद्देश्य है, नहीं तो दो-तीन वर्षों से इतना कष्ट उठाकर ये तिब्बत में क्यों घूम रहे हैं?'

"उस समय वहाँ से अठारह कोस दूर लामाओं की एक सभा हो रही थी। पिछले दिन गवर्नर कुछ लोगों को साथ लेकर उस सभा में गये थे। सहकारी-गवर्नर मेरे ऊपर बड़े मेहरबान थे। वे मुझे एक अच्छे घोड़े पर बैठाकर अपने साथ लामाओं की उस सभा में ले गये। सुबह निकलकर लगभग संध्या के समय हम लोग वहाँ पहुँचे। गवर्नर मुझे देखकर अपने सहकारी पर बड़े नाराज हुए और उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाने लगे। उन्होंने मुझे एक मरियल घोड़ा देकर तत्काल वहाँ से लौट जाने का आदेश दिया। मरता क्या न करता! उन्हीं लोगों का राज्य था; दिन भर के परिश्रम के बाद उस मरियल घोड़े पर सवार होकर थके-मादे शरीर के साथ ३६ मील लौटते हुए मुझे इतना कष्ट हुआ कि उसे कहकर नहीं बताया जा सकता।

"अपने संगियों की सलाह पर मैंने गवर्नर से पासपोर्ट लिया। पासपोर्ट देते समय गवर्नर के मुख पर हल्की-सी हँसी थी, जिसका कारण मैं बिल्कुल भी नहीं समझ सका। वहाँ से तिब्बती परिव्राजकों के साथ मैं काश्मीर की ओर चल पड़ा। मार्ग में इतनी ठण्ड थी कि रोटी तक नहीं तोड़ पाता था, हाथ मानो निर्जीव हो गया था। मेरे लौट आने की इच्छा व्यक्त करने पर उन लोगों ने कहा – ऐसा करने पर गवर्नर आपको कठिनाई में डाल सकता है। उन लोगों ने मुझे रूईभरा पाजामा आदि गरम कपड़े दिये और आग आदि की व्यवस्था कर देने लगे। इसी प्रकार घोड़े पर सवार होकर करीब श्रीनगर के पास तक जा पहुँचा था; तभी घोड़े पर

सवार एक काश्मीरी पण्डित ने मेरे सामने आकर परिचय पूछा। मैंने भी सब ठीक-ठीक बता दिया। उन्होंने मुझे राजा का एक परवाना दिखाते हुए कहा, 'कल आप मजिस्ट्रेट के साथ मुलाकात करें। मेरे संगीगण चट्टी में प्रविष्ट हो गये। चट्टी के बाहर एक पुलिस-चौकी थी। चौकी के जमादार ने मेरी बड़ी आवभगत की और उसी में मुझे एक अलग कमरे में रहने को कहा।

"अगले दिन सुबह वह मुझे मजिस्ट्रेट के पास ले गया। वे बोले, 'राजा का कोई दोष नहीं है। रेजीडेण्ट के आदेशानुसार आपको गिरफ्तार किया गया है। बहुत दिनों से आपकी खोज हो रही थी, पर उस समय आप मिले नहीं। मैं रेजिडेण्ट को तार भेज रहा हूँ, उनका उत्तर न आने तक आप बड़ी कोतवाली में ही रहिए। आपको जो भी आवश्यकता होगी, सब पुलिस की ओर से मिल जायगा।

"मैं थाने में नजरबन्द था। उस समय मेरी आयु २५-२६ वर्ष रही होगी। दो-तीन वर्ष तिब्बत की ओर घूमने से शरीर काफी अच्छा हो गया था। मेरी कम आयु और अच्छा शरीर देखकर, उस बड़ी कोतवाली के एक चौकीदार की स्त्री को मेरे लिए बड़ा खेद था। वह दु:खपूर्वक अपने पति से कहती, 'यह लड़का राजनीतिक मामलों से जुड़ा नहीं है। इसे इस प्रकार कष्ट देना ठीक नहीं है।' मैं पुलिस की कोई भी चीज खाता नहीं था, इस कारण वह महिला ही मुझे खिलाया करती थी। दो-तीन दिन इसी प्रकार बीत गये। उसके बाद मुझे फिर गवर्नर के पास ले जाया गया।

"गवर्नर ने मुझसे कहा, 'रेजिडेण्ट का हुक्म आया है कि आपको पूरी स्वाधीनता मिलेगी, परन्तु हमारी नजरबन्दी में रहना होगा।' पुलिस इंस्पेक्टर को मेरे लिए एक किराये के मकान तथा लिखने-पढ़ने की चीजों की व्यवस्था करने का आदेश हुआ। मैंने कहा – कल ही मुझे अलग मकान नहीं मिला, तो मैं भूख-हड़ताल करूँगा; बिना खाये तुम्हारे राज्य में मर जाऊँगा।

"उस दिन भी मैंने उसी महिला की भिक्षा ग्रहण की। परन्तु अगले दिन मुझे अलग मकान देने की कोई बात ही नहीं उठी, लिखने-पढ़ने की चीजें भी नहीं दी गयीं। मेरे लिए हर रोज दो सेर दूध की व्यवस्था थी, वह भी नहीं देते थे, बस चाय के लिए थोड़ा-सा दूध मिलता था। मैंने भी अनशन शुरू कर दिया कि जब तक अलग मकान की व्यवस्था नहीं हो जाती, तब तक उनका कुछ भी नहीं खाऊँगा। माँ रोने लगी, हठपूर्वक कहने लगी – उन लोगों का नहीं खाओगे, तो मेरी दी हुई रोटी खाओ। मैंने कहा – तुम्हारे पति को केवल नौ रुपये महीने वेतन मिलता है, बाल-बच्चे हैं, दो-तीन दिन तुम लोगों की रोटियाँ खाई, अब और नहीं खाऊँगा। हम लोग ऐसे साधु नहीं हैं, जो गरीब के ऊपर अन्याय-अत्याचार करके, उनके अन्न में हिस्सा लगाएँगे।' मैंने किसी भी हालत में नहीं खाया, वज्र के समान कठोर हो गया। तिब्बत से मैं अपने साथ अच्छी चाय लाया था। केवल वही हरी चाय चबाकर पाँच दिन पड़ा रहा, पर भोजन बिल्कुल भी नहीं किया। इसके बाद भूख की पीड़ा से दिन-रात कष्ट होने लगा, बिस्तर में पड़ा छटपटाने लगा। उस महिला का एक छोटा बच्चा था, जो हर रोज मेरे पाँव दबाने आया करता था। उस दिन मेरा कष्ट देखकर उसने कहा, 'महाराज, देख रहा हूँ कि आपको बड़ा कष्ट हो रहा है। मेरे पास एक पाई है, सेव खरीद लाता हूँ, आप खाइये।' वह लड़का दो बड़े सेव खरीद लाया। उसी को खाकर थोड़ा तरो-ताजा होकर बोला, 'ये दो सेव खाकर मैं पाँच दिन और जूझ सकता हूँ।'

"अगले दिन सुबह पुलिस सुपरिंटेंडेंट के मेरे कमरे में प्रवेश करते ही, जो जी में आया खरी-खोटी सुना दी। बेटा चुपचाप सुनता रहा। उसके बाद नाव में बैठाकर गवर्नर के पास ले जाने के पूर्व उसने मुझे भात खाने को दिया। मैंने चिढ़कर कहा, 'जब तक मुझे अलग मकान नहीं मिल जाता, किसी भी हालत में नहीं खाऊँगा।' उसने कहा, 'गवर्नर ने यह सुनकर कि आप अनशन पर हैं, आपको खिलाकर उनके साथ मिलाने का हुक्म दिया है। उन्होंने कहा है कि बिना खाये मैं नहीं मिलूँगा।' आखिरकार नाव में खाकर मैंने उनके साथ भेंट करके सारी बातें कही।

"राजा के एक समाधिस्थल पर उनकी स्मृतिरक्षा के लिए एक मन्दिर तथा साधुओं के निवास के लिए एक कमरा बना हुआ था। इसके बाद वहीं पर मेरे रहने की व्यवस्था हुई। मन्दिर में प्रतिदिन भोग होता और वही मुझे दिया जाता। हर रोज पुलिस का चौकीदार आकर खबर ले जाता। कहीं भी जाना होने से पुलिस को सूचना देकर ही जाना पड़ता था।

"वहीं पर बागबाजार के ए. टी. मित्र तथा काश्मीर के प्रधान न्यायाधीश ऋषिवर मुखोपाध्याय के साथ भेंट हुई। उन्होंने कहा, 'मैं नहीं जानता कि आपका कोई राजनीतिक उद्देश्य है या नहीं; आपकी सहायता करके क्या हम लोग अपनी नौकरी को जोखिम में डालेंगे?' तथापि लिखने की चीजें देकर उन्होंने मेरी सहायता की। वही कागजपत्र पाकर मैंने वराहनगर मठ में शशि महाराज को पत्र लिखा।

"स्वामीजी उस समय गाजीपुर में पवहारी बाबा के पास थे। मेरे बारे में समाचार पाते ही उन्होंने मठ की ओर से, कलकत्ते से शशि महाराज तथा गिरीश बाबू और काशी से प्रमदादास मित्र आदि दो-एक अन्य प्रभावशाली लोगों के द्वारा काश्मीर के राजनीतिक प्रतिनिधि को पत्र भिजवाकर सूचित किया कि ये हमारे मठ के साधु हैं और धर्म के अतिरिक्त इनका अन्य कोई भी उद्देश्य नहीं है।

"मुझे इच्छा हुई थी कि एक बार आर्यों के आदि निवास

मध्य-एशिया घूम आऊँ, परन्तु स्वामीजी ने बारम्बार लिखकर मुझे लौट आने को कहा।

"उसी समय पुलिस ने मुझे सूचित किया कि मैं या तो सियालकोट जाकर रेजीडेंट के साथ मुलाकात करूँ, अथवा श्रीनगर में १५-२० दिन प्रतीक्षा करूँ। अप्रैल में रेजीडेंट वहाँ लौटने वाले थे। मैं वहीं रह गया। कुछ दिनों बाद मुझे काश्मीर देखने की इच्छा हुई। वहाँ से थोड़ी दूर दो-एक मन्दिर थे, मैं उन्हीं को देखने गया था। इसी बीच रेजीडेंट साहब ने श्रीनगर लौटते ही मेरे पास आदमी भेजा। मेरे कमरे में ताला लगा देखकर, मेरी तलाश में चारों ओर आदमी दौड़ाये गये। और एक सिपाही मेरे कमरे के सामने बैठा रहा। लौटते समय मकान के पास वह बात सुनकर मैं रेजीडेंट से मिलने गया।

"कचहरी में मेरी ऋषिवर बाबू के साथ भेंट हुई। मुझे देखते ही वे बोले – शीघ्र ही रेजीडेंट से मिलिए, वे आपको ढूँढ़ रहे हैं। मेरे मुलाकात करने पर वे बोले – मुझे कलकत्ता, काशी आदि स्थानों से पत्र द्वारा ज्ञात हुआ है कि आपका कोई राजनीतिक उद्देश्य नहीं है। आपके गुरुभाई ने भी पत्र लिखा है। आप अब स्वाधीन हैं; कलकत्ते लौट सकते हैं। या फिर यदि आपकी इच्छा हो, तो मैं सरकार की ओर से आपको तिब्बत में राजदूत के रूप में भेज दूँगा; आपके सारे खर्च आदि राज्य-सरकार वहन करेगी और भविष्य भी बड़ा उज्ज्वल होगा। तो फिर कहिए तो वैसी ही व्यवस्था करूँ। मैंने पूरी तौर से अस्वीकार कर दिया। मैंने कहा – मैं साधु हुआ हूँ और भगवान का नाम लेते हुए दिन बिताता हूँ; मेरे द्वारा कोई भी राजनीतिक कार्य नहीं होगा। इस पर रेजीडेंट साहब ने कहा – क्या आपके पास तिब्बत की कुछ बातें लिखी हुई हैं? मैं बोला – कुछ भी नहीं है। अन्त में वे बोले – आपको जितना याद है, बोलिए। मैं बोलने लगा और एक व्यक्ति लिखने लगा। कमरे से निकलकर बाहर आते समय कई अफसर कहने लगे – महाशय, यह पद आपने क्यों छोड़ा? हम बहुत प्रयास करके भी वह पद नहीं पाते। उत्तर में मैंने उन लोगों से कहा – थोड़े-से धन के लिए तुम लोग मुझे गुप्तचर होने को कहते हो? किसी का उपकार तो कर नहीं सकता और एक स्वाधीन देश का सर्वनाश करूँगा?"

ठीक उसी समय श्रीमती सेवियर आ पहुँचीं और गंगाधर महाराज के साथ 'हिन्दू विश्वविद्यालय' के विषय में उनकी निम्नलिखित बातें होने लगीं –

श्रीमती सेवियर – मैं विश्वविद्यालय की भूमि के पास तक गयी थी, परन्तु इसके भीतर नहीं गयी। इस हिन्दू विश्वविद्यालय के आदर्श तथा शिक्षाएँ क्या होंगी? क्या इसे प्राच्य आदर्शों तथा शिक्षाओं के अनुसार चलाया जायगा?

गंगाधर महाराज – मैंने श्री आशुतोष मुखर्जी से पूछा था। उन्होंने कहा कि आगे चलकर यह भी किसी आधुनिक विश्वविद्यालय के समान होगा।

श्रीमती सेवियर – वे लोग इसमें हिन्दू भावों तथा ज्ञान की शिक्षा देने के लिए अनुरोध क्यों नहीं करते? परन्तु इसकी व्यवस्था पाश्चात्य होनी चाहिए। क्या धन के अभाव में इसके संस्थापक सरकारी सहायता ले रहे हैं और इस प्रकार अपने आपको उसके हाथों में सौंप रहे हैं?

गंगाधर महाराज – नहीं, ये सरकारी सहायता के बिना भी धन एकत्र कर सकते थे, परन्तु सरकार विश्वविद्यालय का नियंत्रण हमारे हाथों में नहीं छोड़ेगी। जस्टिस मुखर्जी और कुछ अन्य लोगों का कहना है कि आखिरकार यह एक आधुनिक विश्वविद्यालय में परिणत हो जायगा, जिसमें प्राच्य शिक्षाओं का कोई भी स्थान नहीं होगा।

श्रीमती सेवियर – इसे पूरी तौर से अपने हाथ में रखने का कोई उपाय नहीं है?

गंगाधर महाराज – नहीं।

श्रीमती सेवियर – हे भगवान !

❖ (क्रमशः) ❖

सभी जीवों में शिव की सेवा करो

जो शिव की सेवा करना चाहता है, उसे पहले उनकी सन्तानों – विश्व के प्राणियों की सेवा करनी होगी। शास्त्रों में कहा है कि जो भगवान् के दासों की सेवा करता है वही भगवान् का सर्वश्रेष्ठ दास है। यह बात सदा ध्यान में रखनी होगी। नि:स्वार्थपरता ही धर्म की कसौटी है। जिसमें जितनी अधिक नि:स्वार्थपरता है, वह उतना ही आध्यात्मिक और उतना ही शिव के समीप है। चाहे वह विद्वान हो या मूर्ख, शिव का सामीप्य दूसरों की अपेक्षा उसे ही प्राप्त है, चाहे उसे इसका ज्ञान हो या न हो। पर इसके विपरीत यदि कोई स्वार्थी है, तो चाहे उसने संसार के सब मन्दिरों के ही दर्शन क्यों न किये हों, सारे तीर्थ क्यों न गया हो और रंग भभूत रमाकर अपनी शक्ल चीते जैसी क्यों न बना ली हो, शिव से वह बहुत दूर है। – *स्वामी विवेकानन्द*

माँ श्री सारदा देवी की कृपा

_प्राध्यापक ए. के. डे_

(सी.पी.एंड बरार महाविद्यालय, नागपुर के सेवानिवृत्त प्राचार्य श्री ए. के. डे रामकृष्ण संघ के सातवें अध्यक्ष स्वामी शंकरानन्दजी के शिष्य हैं। उनके स्वर्गीय पिता श्री राजेन्द्र लाल डे श्रीमाँ के मंत्रशिष्य थे। उन्हें श्रीरामकृष्ण के कुछ साक्षात् शिष्यों का भी आशीर्वाद पाने का सौभाग्य हुआ था। उन्होंने इन सबसे सम्बन्धित अपने पिता के कुछ प्रेरणादायी संस्मरण लिपिबद्ध किये, जो चेन्नै से प्रकाशित होनेवाली अंग्रेजी मासिक 'वेदान्त-केसरी' के जनवरी २०१२ अंक में मुद्रित हुए हैं। अंग्रेजी से इसका अनुवाद नागपुर की ही सुश्री इला बनर्जी ने किया है। – सं.)

मेरे पिता श्री राजेन्द्र लाल डे श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य थे। मेरे पिता का जन्म १८८८ में पूर्वी बंगाल (अब बाँग्लादेश) के खुलना जिले में स्थित मूलधर ग्राम में हुआ था। वे अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान थे। जब वे आठ वर्ष के थे, तभी उनके माता-पिता उन्हें छोड़कर स्वर्ग सिधार गये।

इसके बाद उनके चाचा-चाची ने उनका पालन-पोषण किया। दोनों ने इन्हें अपनी ही सन्तान जैसा स्नेह दिया। १९०६ ई. में वे एन्ट्रेस की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। करीब एक साल शिक्षक का कार्य करने के बाद उन्होंने नये सिरे से बंगाल-नागपुर-रेल्वे में नौकरी शुरू की। उनकी पश्चिमी बंगाल के आदरा स्टेशन पर एक लिपिक के रूप में नियुक्ति हुई। १९१४ ई. में उनका विवाह हुआ।

आदरा के पास एक छोटा-सा शहर है रघुनाथपुर। एक दिन वे वहाँ से आदरा लौट रहे थे, तो सहसा जोर से बारिश होने लगी। उस समय वे एक लम्बे-चौड़े विशाल मैदान से होकर चल रहे थे। वर्षा के प्रकोप से बचने का अन्य कोई रास्ता न देख उन्होंने सामने एक वृक्ष के नीचे आश्रय लिया। शाम का अन्तिम प्रहर था। सूर्य प्राय: अस्त हो चुका था। वर्षा थमने के इंतजार में वे खड़े थे। तभी धुँधले प्रकाश में उन्हें पेड़ के नीचे एक पुस्तक पड़ी हुई दीख पड़ी। वे उसे उठाकर घर ले आए। यह पुस्तक श्रीमाँ सारदा देवी के बारे में थी। उन्होंने जीवन में पहली बार श्रीमाँ के विषय में पढ़ा। उन दिनों वे नाना प्रकार की सांसारिक कठिनाइयाँ झेल रहे थे। कुछ घरेलू समस्याओं के कारण वे मानसिक रूप से त्रस्त थे। उनका मन हताश तथा चंचल था। वे मानसिक शान्ति पाने को आतुर थे, तभी – मानो सही समय पर वह पुस्तक उनके हाथ लगी। उन्होंने उसी रात उस पूरी पुस्तक को पढ़ डाला। इसके फलस्वरूप उनके अशान्त तथा चंचल मन को एक अपूर्व शान्ति की उपलब्धि हुई। उनके मन में श्रीमाँ का दर्शन करने की अदम्य इच्छा का उदय हुआ।

कुछ दिनों बाद वे बेलूड़ मठ गए और महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द) तथा खोका महाराज (स्वामी सुबोधानन्द) से मिले। उन्होंने उनके समक्ष अपने हृदय की बात रखी और मंत्रदीक्षा पाने की इच्छा व्यक्ति की। दोनों ने उन्हें जयरामबाटी जाने की सलाह दी, क्योंकि उन दिनों श्रीमाँ वहीं निवास कर रही थीं। तदनुसार वे शीघ्र ही जयरामबाटी जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक भक्त से पूछा कि क्या वे श्रीमाँ का दर्शन करा सकेंगे। उस भक्त ने मेरे पिताजी के प्रति सहानुभूति दिखायी और उन्हें श्रीमाँ का दर्शन कराने में सहायता की।

श्रीमाँ के दिव्य रूप का दर्शन करके मेरे पिता को ऐसा लगा मानो उन्हें अपनी खोई हुई माता मिल गयी हों और सामने ही विराजमान हों। श्रीमाँ के दर्शन मात्र से पिताजी का सारा संकोच दूर हो गया और वे सहज भाव से माताजी से बातें करने लगे। माँ से मंत्रदीक्षा का आश्वासन पाकर उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। माँ से मंत्रदीक्षा पाने के बाद वे बड़े ही प्रसन्न चित्त के साथ घर लौटे। वे प्रतिदिन सुबह-शाम अपने घर के पूजाकक्ष में बैठकर पूजा तथा प्रार्थना करते और माँ का दिया हुआ मंत्र जपते। उनके मन में खीर (पायस) बनाकर श्रीरामकृष्ण को भोग देने की इच्छा हुई, परन्तु किसी ने उन्हें बताया कि कायस्थ होने के कारण वे ठाकुर को पके अन्न का भोग नहीं दे सकते। अत: अगली बार जब वे श्रीमाँ का दर्शन करने गये, तो उन्होंने माँ से पूछा कि क्या वे कायस्थ होकर भी ठाकुर को पके हुए अन्न का भोग लगा सकते हैं? माँ ने उत्तर दिया कि ठाकुर की सन्तान होने के कारण उन्हें उनको अन्नभोग देने का पूरा अधिकार है। उन्होंने यह भी कहा कि भक्तिपूर्वक निवेदन किया हुआ कोई भी भोग श्रीरामकृष्ण बड़ी प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करेंगे।

मेरे पिताजी की दीक्षा के करीब एक या दो साल बाद, मेरी माता ने सपने में देखा कि श्रीमाँ उन्हें मंत्र दे रही हैं।

मेरे पिताजी ने अपनी अगली जयरामबाटी-यात्रा के समय श्रीमाँ को उस पवित्र सपने की बात बताई। सब सुनने के बाद उन्होंने कहा कि मेरी माँ को सपने में जो कुछ मिला है, वे उसी मंत्र का प्रतिदिन सुबह-शाम नियमित रूप से जप किया करें। तदनुसार मेरी माँ ने भक्ति भाव से दिन में दो बार उस मंत्र का जप करना प्रारम्भ कर दिया। साथ-ही-साथ उन्होंने 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत', श्रीरामकृष्ण के उपदेश और रामायण -महाभारत आदि पवित्र ग्रन्थों का भी पाठ शुरू कर दिया।

मेरे माता-पिता बड़े शान्ति एवं सुखपूर्वक एक पवित्र जीवन बिता रहे थे, परन्तु तभी मेरी नानी अपनी पुत्री के साथ रहने के लिये हमारे घर में आ गयीं। इससे घर का सारा

वातावरण बिगड़ गया। वे हमारे पारिवारिक मामलों में दखल देने लगीं। मेरे माता-पिता को भी तरह-तरह के निर्देश देने लगीं। उनके इस रवैये से घर का वातावरण तनावपूर्ण हो गया। मेरे पिता का मन खूब दृढ़ था। वे अपनी सास के आदेशों को नहीं मानते। पर मेरी माँ बड़े कोमल मन की थीं। अत: घर के इस विषाक्त वातावरण ने उनके मन पर बुरा असर डाला। अपनी सास की ज्यादतियों से तंग आकर एक दिन मेरे पिता ने उन्हें घर से चले जाने को कहा। मेरी नानी ने सदा के लिए अपनी बेटी का घर त्याग दिया।

मेरी माँ इस घटना से अत्यधिक मर्माहत हुईं। इस मानसिक आघात से उनका मानसिक सन्तुलन बिगड़ गया। वे घर-गृहस्थी के दैनिक कार्यों को एकाग्रचित्त से करने में असमर्थ हो गईं। कुछ समय बाद उन्होंने स्नान करना, रसोई पकाना और मंत्रजप आदि भी पूरी तौर से बन्द कर दिया। यहाँ तक कि अपने छोटे-से पुत्र की सेवा-सँभाल से भी उन्होंने स्वयं को मुक्त कर लिया। वे कमरे के एक कोने में बैठकर अपने आप से असम्बद्ध बातें करतीं और बड़बड़ातीं। मेरी माँ का मनोविकार देखकर पिताजी बड़े दुखी हुए। वे किं-कर्तव्य-विमूढ़ हो गए। उन्हें सूझ नहीं रहा था कि क्या करें और क्या न करें। ऐसे कठिन समय में उनके एक मित्र ने साथ दिया। मित्र की सलाह मानकर पिताजी ने उनका वैद्यकीय उपचार शुरू कराया। यद्यपि यह उपचार काफी समय तक चला, पर इससे माता की बीमारी के लक्षण जरा भी कम नहीं हुए। वे उसी प्रकार मानसिक रोग से ग्रस्त रहीं।

इस घटना से पूरी तौर से टूटकर मेरे पिताजी जयरामबाटी गए। उन्होंने श्रीमाँ सारदा देवी को पूरी घटना की जानकारी दी। सारी बातें सुनकर श्रीमाँ अत्यन्त व्यथित हो उठीं। उन्होंने पिताजी को आश्वासन देते हुए कहा कि वे मेरी माँ को साथ लेकर शीघ्र जयरामबाटी आयें। यहाँ आकर वे शीघ्र ही स्वस्थ व निरोग हो जाएँगी। माताजी के आश्वासन से सन्तुष्ट होकर मेरे पिता कुछ दिनों बाद ही मेरी माँ को साथ लेकर जयरामबाटी के लिये रवाना हो गए, किन्तु उसी समय आमोदर नदी में भयंकर बाढ़ आ जाने के कारण वे वहाँ पहुँच नहीं सके। इस घटना के कुछ समय बाद फुर्सत पाकर जब वे पुन: जयरामबाटी जाने की तैयारी कर रहे थे, तभी उन्हें सूचना मिली की श्रीमाँ अत्यन्त बीमार हैं। उन्होंने खाट पकड़ ली है और इस समय वे कलकत्ते में है।

इसी दौरान मेरे पिताजी का महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्दजी) से परिचय हुआ। पिताजी से सारी बातें सुनकर वे बड़े दुखी हुए और उन्होंने पिताजी को आश्वासन देते हुए कहा, ''हम आपकी पत्नी के आरोग्य के लिए श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करेंगे, ताकि वे शीघ्र ही स्वस्थ हो सामान्य जीवन जी सकें।'' यद्यपि मेरी माँ को, श्रीमाँ के पास नहीं ले जाया जा सका, परन्तु आश्चर्य की बात यह हुई कि उस दिन के बाद से मेरी माता के मानसिक रोग के चिह्न घटने लगे और क्रमश: उनके स्वास्थ्य में अभूतपूर्व सुधार दृष्टिगोचर हुआ। करीब दो वर्ष बाद मेरी माँ इस मानसिक रोग से पूर्णत: मुक्त हो गईं और एक आम गृहिणी की तरह अपनी घर-गृहस्थी के दायित्व का निर्वाह करते हुए सामान्य जीवन जीने लगीं। जो बीमारी एक विख्यात चिकित्सक के इलाज से दूर न हुई, वह श्रीमाँ के आशीर्वाद, श्रीरामकृष्ण की अनुकम्पा और महापुरुष महाराज की प्रार्थना से दूर हो गई। महापुरुष महाराज का मेरी माँ के प्रति अत्यन्त स्नेह था। मेरी माँ ने बहत्तर वर्ष की आयु तक एक सामान्य व्यक्ति के समान जीवन बिताया। स्वस्थ होने के बाद से शान्त एवं सामान्य व्यक्ति की तरह व्यवहार करने लगी थीं। वे शान्तिपूर्वक घर के दैनन्दिन कार्य सम्पन्न करतीं। पूजा-पाठ के अलावा यदि घर पर कोई साधु-संन्यासी आते, तो वे बड़ी भक्ति तथा आदर के साथ उनका अतिथ्य-सत्कार करतीं। उस समय मेरी माँ का मुखमण्डल, उनके हृदय की शान्ति और पवित्रता के भावों को अभिव्यक्त करता था।

शायद १९२२ ई. की बात है। मेरे पिताजी का तबादला उड़ीसा में स्थित खुर्दारोड जंक्शन पर हुआ। रामकृष्ण मठ-मिशन के संन्यासीगण पुरी जाते समय खुर्दारोड स्टेशन पर उतरकर वहाँ से ट्रेन बदलते थे। हमारा घर स्टेशन से ही लगा हुआ था, अत: पुरी की गाड़ी के लिये प्रतीक्षा करते समय वे संन्यासी हमारे घर आ जाया करते थे। उनके आगमन को मेरे माता-पिता ठाकुर का आशीर्वाद मानते थे। मेरी माँ उन संन्यासियों के लिए नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन तथा पकवान बनाया करती थीं। खोका महाराज मेरी माँ के पकाए भोजन की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। खुर्दारोड स्टेशन पर एक बार मेरे पिता की महापुरुष महाराज से भी भेंट हुई थी, जिसका विवरण 'श्रीम' दर्शन में लिखा है।

तदनुसार १९२६ की पाँच मई बुधवार को स्वामी शिवानन्द अपने अनुयाइयों के साथ रेल द्वारा पुरी गए। स्टेशन में उतरकर सुबह करीब सात बजे कार द्वारा वे श्री जगन्नाथजी के मन्दिर पहुँचे। दर्शन के बाद शाम को सात बजे कलकत्ता एक्सप्रेस से वे भुवनेश्वर की ओर रवाना हुए। रास्ते में खुर्दा रेलवे स्टेशन में एक रेल-कर्मचारी, महाराज का एक अनन्य भक्त तथा श्रद्धालु जिसका नाम राजेन (राजेन्द्रलाल डे) था, उनके दर्शनार्थ आया। स्वामी शिवानन्दजी उनसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। वे आनन्दपूर्वक पिताजी का कुशलक्षेम पूछने लगे। पिताजी ने जब अपनी पत्नी के बिगड़े हुए स्वास्थ्य के बारे में बताया, तो उसे सुनकर स्वामी शिवानन्दजी एक ममतामयी माँ की तरह भावविह्वल हो उठे। उन्होंने मेरे पिता को सांत्वना देते हुए कहा कि इस संसार की यही प्रकृति है। श्रीरामकृष्ण का स्मरण करो। वे तुम्हारे सारे दु:ख दूर कर

देंगे। ऐसा कहकर वे अन्तर्मुखी हो गए मानो वे स्वयं श्रीरामकृष्ण से अपने इन अनन्य भक्त के मंगल हेतु याचना कर रहे हों।

१९३० ई. में मेरे पिता की बदली पुन: आदरा जंक्शन स्टेशन पर हो गई। कुछ ही समय में वे वहाँ के स्थानीय निवासियों के बीच अत्यन्त लोकप्रिय हो उठे, जो उन्हें आदर तथा सम्मान की दृष्टि से देखते थे। यहाँ पर वे श्रीरामकृष्ण के पुराने भक्तों के सहयोग से श्रीरामकृष्ण की जन्मतिथि पर एक विशाल उत्सव का आयोजन किया करते थे। यह उत्सव तीन दिन तक चलता था। इस पवित्र उत्सव के समय निर्धन तथा जरूरतमन्द लोगों को अन्न-वस्त्र का वितरण किया जाता था। इस नारायण-सेवा का लाभ उठाने के लिये विशाल संख्या में लोग आया करते थे। पास-पड़ोस के नगरों तथा गाँवों के भी अनेक भक्त इस उत्सव में सम्मिलित होने को उपस्थित हुआ करते थे। उस दौरान प्रतिदिन शाम को धर्मशास्त्र तथा जीवन-दर्शन पर व्याख्यान आदि हुआ करते थे। इस व्याख्यान-माला को सुनने के लिये श्रोतागण बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे। प्रतिवर्ष बेलूड़ मठ के कोई स्वामीजी इस आयोजन के अध्यक्ष होते। सभा के मंच पर खड़े होकर अपने विचार व्यक्त करनेवालों विद्वानों में प्रमुख थे – सर्वश्री एस. वाजिद अली, प्राध्यापक विनय कुमार सरकार, प्राचार्य डॉक्टर ब्राउन, न्यायाधीश नफी ईनाम आदि। आज तक आदरा शहर के लोगों में श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदादेवी तथा स्वामी विवेकानन्दजी की जन्मतिथि मनाने की परम्परा अबाध रूप से चली आ रही है।

श्रीमाँ के कई संन्यासी शिष्यों के सात मेरे पिता का प्रगाढ़ परिचय था, जिनमें स्वामी परमेश्वरानन्द (किशोरी महाराज) तथा तपानन्दजी उल्लेखनीय हैं। किशोरी महाराज प्राय: ही हमारे घर आते। स्वामी तपानन्द बहुत अच्छे भजन लिखते थे और एक उत्कृष्ट गायक भी थे। श्रीमाँ को उनके भजन बड़े पसन्द थे। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के कई घनिष्ठ शिष्यों की सेवा की थी।

मेरे पिताजी की सेवानिवृत्ति के करीब दो वर्ष पूर्व मेरे बड़े भाई को टायफायड हुआ और इसके फलस्वरूप उनका देहान्त हो गया। ज्येष्ठ पुत्र की असामायिक मृत्यु से मेरे माता-पिता घोर शोक में डूब गये। यह दुखद समाचार सुनकर किशोरी महाराज तत्काल जयरामबाटी से हमारे घर पधारे। उनकी उपस्थिति से मेरे माता-पिता को थोड़ी सान्त्वना मिली। इन शोक के दिनों में एक दिन शाम को किशोरी महाराज हमारे पारिवारिक पूजागृह में वेदी के निकट खड़े होकर संध्या आरती कर रहे थे, तभी सहसा उनके उत्तरीय (चादर) में आग लग गयी। उसे तत्काल बुझा दिया गया।

बाद में उन्होंने मेरे पिताजी से पूछा कि क्या उनके मृत पुत्र ने दीक्षा ली थी। पिताजी के नहीं कहने पर किशोरी महाराज ने उन्हें अपने बाकी पुत्रों को तत्काल बेलूर मठ ले जाकर दीक्षा दिलवाने की सलाह दी। तदनुसार पिताजी ने यथाशीघ्र हम तीनों भाइयों की मंत्रदीक्षा की व्यवस्था की।

अपने सेवानिवृत्ति के बाद मेरे पिता अपने परिवार सहित पुरुलिया (पश्चिम बंगाल) में स्थायी रूप में बस गए। यहाँ आने के बाद जब तक पिताजी जीवित रहे, श्रीरामकृष्ण तथा श्रीमाँ सारदादेवी की जन्मतिथि का उत्सव बड़े पैमाने पर आयोजित कराते रहे। इस अवसर पर करीब पाँच सौ भिक्षुकों, जिनमें से अधिकांश कुष्ठ रोग से ग्रस्त थे, को भरपेट भोजन तथा वस्त्र देकर तृप्त किया जाता था। शाम के समय स्वर्गीय आनन्द से भरपूर भजन-संगीत का कार्यक्रम होता, तत्पश्चात श्रीरामकृष्ण तथा श्रीमाँ सारदादेवी के जीवन तथा उपदेश और मानव जीवन के उद्देश्य पर प्रवचन होते।

जब तक मेरे पिताजी जीवित रहे, उन्होंने श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ के उपदेशों का पूर्णरूपेण पालन करते हुए अपने जीवन को धन्य बनाया। कहना न होगा कि पिताजी आर्थिक दृष्टि से बड़े सम्पन्न न थे, तथापि उन्होंने निर्धन तथा अभावग्रस्तों को यथाशक्ति आर्थिक सहायता दी। १९६० ई. में बहत्तर साल की आयु में वे परम धाम को पधारे। ❑❑❑

संदर्भ ग्रन्थ – **१.** माँ की बातें, रामकृष्ण मठ, नागपुर; **२.** श्रीश्री सारदा देवी (बँगला), ब्रह्मचारी अक्षयचैतन्य, पृ. ८; **३.** रेलकर्मीर स्मृतिकथा (बँगला), परिमल डे, कोलकाता; **४.** श्रीम-दर्शन (बँगला) नित्यात्मानन्द, श्रीम ट्रस्ट, चण्डीगढ़, खंड १५, पृ. १६५-१७२; **५.** शिवानन्द-पत्रसंग्रह (बँगला), रामकृष्ण मठ, बारासात, पृ. १८५

वही मनुष्य है कि जो, मनुष्य के लिये मरे

यह जीवन क्षणस्थायी है, संसार के भोग-विलास की सामग्रियाँ भी क्षणभंगुर हैं। वे ही यथार्थ में जीवित हैं, जो दूसरों के लिए जीवन धारण करते हैं। बाकी लोगों का जीना तो मरने ही के बराबर है।

चाहे अपने को नरक में क्यों न जाना पड़े, परन्तु दूसरों की मुक्ति हो। मुझे अपनी मुक्ति की चिन्ता नहीं है।

बड़े-बड़े काम बिना बड़े स्वार्थ-त्याग के नहीं हो सकते। *– स्वामी विवेकानन्द*

मातृदर्शन

सारदा दासन

(माँ श्री सारदा देवी दैवी-मातृत्व की जीवन्त विग्रह थीं। उनके अनेक शिष्यों तथा भक्तों ने उनकी मधुर-पावन स्मृतियाँ लिपिबद्ध कर रखी हैं। बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' से इस लेख का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। – सं.)

लगभग १६ वर्ष पूर्व* मद्रास के 'हिन्दू' नामक अंग्रेजी दैनिक अखबार से श्री सारदा देवी के शुभागमन का संवाद जानकर, मेरे माता-पिता जिस दिन मुझे उनके दर्शन के लिए ले गये, उस पुण्य दिन की स्मृति आज तक मेरे मन में बनी हुई है। उस समय मैं ठाकुर और माँ के बारे में ज्यादा कुछ नहीं जानता था। भगवान रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द आदि नाम केवल सुना भर था, पर उनकी महिमा या श्रीमाँ के महत्त्व के बारे में कुछ नहीं जानता था। अपने पिता के मुख से मैं कभी-कभी स्वामी विवेकानन्द की बातें सुनता – वे वेदान्त के प्रकाण्ड विद्वान् थे और उनकी व्याख्या हिन्दू धर्म के बारे में हमारी भ्रान्त धारणाओं को दूर करके हिन्दू धर्म के प्रति अनुराग जगाता था और हम लोगों में देशप्रेम जाग्रत कर देता।

मैं और मेरे माता-पिता कुतुहलवश ही माँ का दर्शन करने गये थे। हम लोग भक्त के रूप में उनके पास नहीं गये थे। तथापि मयलापुर श्रीरामकृष्ण मठ के निकट के पास के एक मकान में माँ का दर्शन करते ही मेरा मन उनकी अमृत-वर्षिणी दृष्टि की ओर आकृष्ट हुआ। उसके बाद मेरे मन में बारम्बार उनका सान्निध्य पाने की प्रबल इच्छा होने लगी। उस समय मन में यह प्रश्न नहीं उठता कि क्यों पागलों की तरह उनके पास जाता हूँ, अभी भी विचार करने पर मैं कारण नहीं जान पाता कि हममें और माँ में क्या साम्य था? माँ अंग्रेजी, तमिल या संस्कृत – कोई भी भाषा नहीं जानती थीं और हम लोगों का लेश मात्र भी बंगला भाषा से परिचय न था। वे देवत्व-सम्पन्न पवित्रता-स्वरूपिणी तथा नित्य-प्रसन्न-वदना थीं, परन्तु मैं एक दोष-त्रुटि-परिपूर्ण अति साधारण मनुष्य और धर्म के प्रति पूर्णत: अनुराग-शून्य एक दीन बालक था। इन सबके बावजूद हम लोगों में शायद कोई एक विशेष सादृश्य अवश्य था। कवि ने कहा है, "अति हीन पापियों को भी विधाता के विशेष विधान से सौभाग्य-लाभ करते देखा गया है।" मेरे मातृदर्शन को भी विधि का विधान ही कहा जायेगा।

माँ जब तक मद्रास में रहीं, तब तक मैं प्रतिदिन उनके पास जाकर उनका दर्शन किया करता और उनका स्नेह प्राप्त करता। कुछ दिन बाद उनकी विदाई की घड़ी आ पहुँची। परन्तु उन कुछ दिनों के दौरान ही रामकृष्ण मठ (मयलापुर) के तत्कालीन अध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रामकृष्णानन्दजी के स्नेह-सान्निध्य में आने के फलस्वरूप माँ का चले जाना मेरे लिए उतना कष्टदायक नहीं प्रतीत हुआ। मेरे माता-पिता ने माँ से मंत्रदीक्षा तथा अनेक अमूल्य उपदेश प्राप्त किये थे। जिस दिन माँ ने हम लोगों के घर पधार कर हमारे यहाँ का नैवेद्य ग्रहण किया था, वह पवित्र दिन मेरे स्मृति-पटल पर सदैव स्मरणीय रहेगा।

इसके बाद कई वर्ष बीत गये। वैसे माँ की महत्ता का पूर्ण रूप से बोध न कर पाने के फलस्वरूप, उनके सान्निध्य तथा दर्शन का अभाव मुझे अधिक नहीं सालता था, परन्तु मेरे माता-पिता के मन में माँ के दर्शन की इच्छा क्रमश: बढ़ने लगी। वे लोग जितना ही अधिक ठाकुर तथा माँ की जीवन-कथा से परिचित होने लगे और श्रीमाँ से प्राप्त महामंत्र का जप करने लगे, उतनी ही उनकी मातृदर्शन की इच्छा तीव्र होने लगी। मेरे पिता को अपने कर्म से अवकाश न मिल पाने के कारण उन्होंने मातृदर्शन हेतु मेरी माता को मेरे साथ कलकत्ते भेजा। मैं तथा मेरी माता ने कलकत्ते पहुँचकर रामकृष्ण मठ की सहायता से एक संगी प्राप्त किया और माँ के आविर्भाव-स्थल जयरामबाटी गये। जयरामबाटी विष्णुपुर रेलवे स्टेशन से लगभग बीस किलोमीटर दूर है। वह एक छोटा-सा गाँव है। किन्तु अब वह गाँव एक पुण्यक्षेत्र में परिणत हो गया है। वहाँ माँ का आविर्भाव हुआ था और उन्होंने वहाँ बहुत दिनों तक निवास किया था। बाद में वहाँ माँ का एक मन्दिर भी निर्मित हुआ है। परन्तु मेरी माता को उसी समय जयरामबाटी एक पवित्र देवालय सरीखा प्रतीत हुआ था, क्योंकि वह ग्राम उनकी गुरु श्री सारदादेवी के आविर्भाव तथा निवास से धन्य और पवित्र हो चुका था।

वह गाँव छोटा होते हुए भी अति सुन्दर तथा मनोहर है। हम लोगों के संगी ब्रह्मचारी विरूपाक्ष परम भक्तिमान थे। वहाँ के एक तालाब को दिखाते हुए उन्होंने कहा, "यहीं पर माँ स्नान करती हैं। यह अत्यन्त शुद्ध और पवित्र है।" इतना कहकर उन्होंने उस तालाब को प्रणाम किया। जब वे माँ के सामने रहते, तो भक्तिविह्वल चित्त से हाथ जोड़े मौन खड़े

* यह लेख १९२५ ई. में तमिल भाषा में लिखा गया था।

रहते। श्रीमाँ के प्रति अपनी माता की भक्ति से तो मैं थोड़ा-बहुत परिचित था, परन्तु इन ब्रह्मचारी महाराज की भक्ति-विह्वलता मेरे लिये परम विस्मय की वस्तु थी, क्योंकि भक्ति क्या है – इस विषय में मैं पूर्णत: अनभिज्ञ था। लेकिन इन ब्रह्मचारी विरूपाक्ष की भक्ति ने मुझमें संक्रमित होकर माँ के प्रति मेरे मन में भी श्रद्धा-भक्ति की वृद्धि कर दी।

बहुत-से लोग श्रीमाँ का दर्शन करने जयरामबाटी आते रहते। माँ भी उनके साथ आनन्दपूर्वक अथक भाव से बातचीत करतीं। पर मैं बँगला भाषा न जानने के कारण उनकी बातों के मर्म से वंचित रह जाता। श्रीमाँ के एक भाई के साथ मैं प्राय: ही बातचीत करता। वे भी बँगला के सिवा अन्य कोई भाषा नहीं जानते थे। ब्रह्मचारी विरूपाक्ष के दुभाषिये के रूप में सहायता करने से हमारा यह वार्तालाप सहज हो गया था।

माँ के जन्मस्थान में मैं तीन रात रहा। उसमें से एक दिन मैं पाँच मील दूर स्थित कामारपुकुर गाँव गया था। कामारपुकुर श्रीरामकृष्ण देव का आविर्भाव-क्षेत्र है। जाते समय श्रीरामकृष्ण के बाललीला के स्थानों का दर्शन करते हुए गया था – जिस आम के बगीचे में वे कीर्तन आदि किया करते थे और कई बार समाधिस्थ हुए थे (आजकल वहाँ श्रीरामकृष्ण-सारदा कॉलेज स्थित है), वह हालदारपुकुर तालाब, जिसमें वे स्नान करते थे और जो उनके पवित्र देह के स्पर्श से धन्य हो गया था; उनके घर के पास स्थित (युगी लोगों का) शिव-मन्दिर आदि। उनका जन्मस्थान अभी भी ठीक वैसे ही संरक्षित है। उन दिनों वहाँ एक तुलसी का पौधा लगा हुआ था (बाद में उस स्थान पर श्रीरामकृष्ण का मन्दिर बना)। उस मकान में ठाकुर के भतीजे रहते थे। उन्हें देखकर मुझे भगवान श्रीरामकृष्ण के मुखमण्डल पर विराजने वाली शान्ति का थोड़ा-सा आभास मिला था। उन्होंने हम लोगों को रघुवीर का वह विग्रह दिखाया, जिसकी श्रीरामकृष्ण अपने बचपन में पूजा किया करते थे। मेरे मन में आया – क्या मैं रघुवीर के विग्रह की पूजा नहीं कर सकता? तब मुझे श्रीरामकृष्ण की एक वाणी याद आयी। उन्होंने एक भक्त से कहा था, "तुम गृहस्थी में रहकर मेरी पूजा कर सकते हो।"

जयरामबाटी में अगले दिन सुबह जब मैं माँ के मकान के सामने खड़े होकर माँ के भाई के साथ बातें कर रहा था, तभी ब्रह्मचारी विरूपाक्ष ने आकर कहा, "श्रीमाँ तुम्हें बुला रही हैं।" मैं भीतर गया। माँ ने मुझे एक कुशासन पर बैठने को कहा और श्रीराम के राज्याभिषेक का चित्र दिखाते हुए इशारे से बोली, "इसी रूप में श्रीरामचन्द्र और सीतादेवी का ध्यान करो।" तब मैंने उनके पास बैठकर उनके करुणा-विगलित मुखमण्डल को देखा। उन्होंने मेरे दाहिने कान में दो मंत्र दिये। मैं समझ नहीं सका कि कामारपुकुर में मेरे मन में जो इच्छा उदित हुई थी, उसे इन्होंने कैसे जान लिया। कुछ ही क्षणों में मंत्रदान सम्पन्न हुआ। अंगन्यास, करन्यास आदि कुछ भी न था। उन्होंने ब्रह्मचारी विरूपाक्ष को बुलाकर उनके माध्यम से मुझे उपदेश दिया, "इस मंत्र को जपते हुए ध्यान करना। इसके लिये कोई निर्दिष्ट समय नहीं है, शुचि-अशुचि का भी विचार करने की जरूरत नहीं। इसी से तुम्हारा सम्पूर्ण कल्याण साधित होगा, अन्य किसी मंत्र की जरूरत नहीं।"

माँ के उपदेशानुसार उस दिव्य दोनों मंत्रों को ठीक-ठीक जपने में समर्थ नहीं हुआ। जीवन में अनेक बाधा-विघ्नों का भी सामना करना पड़ा है। जप के प्रति मेरे मन में बहुत अधिक आग्रह भी नहीं था। केवल एक चीज मेरे मन में कभी दूर नहीं हुई। आज भी सुख-दुख के क्षणों में मेरे नेत्रों के समक्ष बारम्बार श्रीमाँ की वही प्रेमघन श्रीमूर्ति उद्भासित होती है। उनके मौन मुखमण्डल से नि:सृत होनेवाले करुणा-प्रवाह को भला मैं कैसे भूल सकता हूँ? माँ से मंत्र पाने की मेरे मन में कभी प्रबल इच्छा उठी थी, पर किस प्रकार वह आकांक्षा पूर्ण होगी, यही सोचकर मैं चिन्तित था। उनके पास जाकर कहने का साहस भी मुझमें नहीं था। उस दिन मैं माँ के घर के सामने बैठा था। माँ ने जिस प्रकार सहसा मुझे अपने पास बुलाकर यत्नपूर्वक महामंत्र प्रदान किया था और जिस प्रगाढ़ स्नेह के साथ मुझे आशीर्वाद दिया था और उनका वह दिव्य मुखमण्डल आज भी मेरे नेत्रों के सामने उद्भासित होकर मुझे आनन्द-सागर में डूबो देता है। इस जगत् में मुझे और भला चाहिये ही क्या?

❖ (क्रमश:) ❖

महावीर हनुमान को अपना आदर्श बनाओ

इस समय महावीर हनुमान के चरित्र को ही तुम्हें आदर्श बनाना पड़ेगा। देखो न, वे राम की आज्ञा से समुद्र लाँघकर चले गये ! जीवन-मृत्यु की परवाह कहाँ? महा-जितेन्द्रिय, महा-बुद्धिमान, दास्य भाव के इन महान् आदर्श से तुम्हें अपना जीवन गढ़ना होगा। वैसा करने पर दूसरे भावों का विकास स्वयं ही हो जायगा। दुविधा छोड़कर गुरु की आज्ञा का पालन और ब्रह्मचर्य की रक्षा – यही है सफलता का रहस्य ! नान्य पन्था: विद्यतेऽयनाय – अवलम्बन करने योग्य और दूसरा पथ नहीं है। एक ओर हनुमान जी के जैसा सेवाभाव और दूसरी ओर वैसे ही त्रैलोक्य को भयभीत कर देनेवाला सिंह जैसा विक्रम ! – ***स्वामी विवेकानन्द***

स्वामीजी का गाजीपुर-प्रवास (२)

स्वामी विदेहात्मानन्द

भजन-संगीत की रस-माधुरी

सतीशचन्द्र स्वामीजी के बाल्यबन्धु थे। काफी दिनों बाद वे स्वामीजी से मिलकर बड़े प्रसन्न थे। महेन्द्रनाथ दत्त बताते हैं – सतीशचन्द्र मृदंग अच्छा बजाते थे। दक्षिणेश्वर में नरेन्द्रनाथ जब श्रीरामकृष्ण के सामने ध्रुपद-संगीत गाते, तो कई बार वे मृदंग लेकर उनका संगत करते। उनके पिता ईशानचन्द्र मुखोपाध्याय श्रीरामकृष्ण के विशेष कृपापात्र थे, अत: वे उनके पुत्र सतीशचन्द्र से भी बड़ा स्नेह करते थे। गाजीपुर में दोनों मित्रों के एकत्र मिल जाने पर फिर दोनों का एक साथ गाना-बजाना चलने लगा।[७] कहना न होगा कि नगर के अन्य अनेक लोग भी इस उच्चांग संगीत का रसास्वादन करने उपस्थित होते रहे होंगे।

गाजीपुर से ही ३० जनवरी, १८९० को कलकत्ते के बलराम बोस के नाम अपने दूसरे पत्र में वे लिखते हैं – "इस समय मैं गाजीपुर में सतीश बाबू के यहाँ ठहरा हूँ। मुझे जिन स्थानों को देखने का मौका मिला, उनमें यह स्थान स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। वैद्यनाथ का जल बड़ा खराब है, हजम नहीं होता। इलाहाबाद में बस्ती बड़ी घनी है – वाराणसी में इतना मलेरिया है कि जब तक रहा, निरन्तर ज्वर बना रहा। गाजीपुर में, खासकर जहाँ मैं रहता हूँ, वहाँ की जलवायु स्वास्थ्य के लिए बड़ी लाभदायक है। पवहारी बाबा का निवास-स्थान देख आया हूँ। चारों तरफ ऊँची दीवारें हैं, देखने में साहबों के बँगले जैसा है, अन्दर बगीचा है, बड़े-बड़े कमरे तथा चिमनी आदि हैं। वे किसी को भीतर नहीं आने देते, जब कभी इच्छा होती है, तब स्वयं ही दरवाजे पर आकर भीतर से ही बातचीत करते हैं। एक दिन वहाँ जाकर बैठा-बैठा सर्दी खाकर लौटा था। रविवार को वाराणसी जाना है। इस बीच में यदि उनसे भेंट हुई, तो ठीक, नहीं तो न सही।

"प्रमदाबाबू के बगीचे के बारे में वाराणसी से निश्चय करके लिखूँगा। काली भट्टाचार्य यदि आना ही चाहे, तो रविवार को मेरे वाराणसी चले जाने के बाद ही आये – न आना ही अच्छा होगा। वाराणसी में दो-चार दिन रहकर मुझे शीघ्र ही ऋषीकेश जाना है – प्रमदाबाबू के साथ भी जा सकता हूँ। आप लोग तथा तुलसीराम आदि मेरा यथायोग्य नमस्कार आदि ग्रहण करें और फकीर, राम, कृष्णमयी आदि को मेरा आशीर्वाद कहें।

पुनश्च – मुझे लगता है कि कुछ दिनों के लिये यदि आप गाजीपुर में आकर रहें, तो बड़ा अच्छा होगा। यहाँ सतीश आपके रहने के लिए बँगले की व्यवस्था कर देगा और गगनचन्द्र राय नामक एक अन्य व्यक्ति हैं, जो अफीम दफ्तर के हेड (बड़े बाबू) और बड़े ही सज्जन, परोपकारी तथा मिलनसार हैं। ये लोग सब ठीक कर देंगे। यहाँ मकान का किराया १५-२० रुपये है; चावल महँगा है, दूध रुपये में १६ से २० सेर है, अन्य वस्तुएँ खूब सस्ती हैं। इन लोगों की देखरेख में आपको किसी तरह के कष्ट की सम्भावना नहीं है, पर खर्च थोड़ा अधिक जरूर होगा। ४०-५० रुपये से अधिक पड़ेगा। वाराणसी बड़ा मलेरियाग्रस्त नगर है।

"प्रमदाबाबू के बगीचे में मैं कभी नहीं रहा हूँ – वे कभी मुझे अपने से दूर ही नहीं होने देते। बगीचा वास्तव में खूब सुन्दर, सुसज्जित, विशाल तथा खुला हुआ है। अबकी बार वहाँ कुछ दिन ठहरकर तथा भलीभाँति देखकर आपको लिखूँगा।"[८]

इस पत्र से पता चलता है कि इन दिनों भक्तप्रवर बलराम बोस का स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था। जलवायु-परिवर्तन हेतु उनकी वाराणसी आने का विचार है, परन्तु स्वामीजी उन्हें गाजीपुर आने की सलाह दे रहे हैं।

३१ जनवरी को प्रमदादास मित्र के नाम तीसरे पत्र में वे लिखते हैं – "बाबाजी से भेंट होना बड़ा कठिन है। वे मकान से बाहर ही नहीं निकलते। इच्छा होने से दरवाजे पर आकर भीतर से ही बातें करते हैं। खूब उँची दीवारों से घिरा हुआ, उद्यानयुक्त तथा दो चिमनियों से सुशोभित उनका आवास मैं देख आया हूँ; भीतर जाने की इच्छा नहीं है। लोग कहते हैं कि भीतर गुफा अर्थात् तहखाने जैसी एक कोठरी है, वे उसी में रहते है। वे क्या करते हैं, यह वे ही जानें, क्योंकि कभी किसी ने देखा नहीं है। एक दिन मैं वहाँ जाकर बैठा-बैठा कड़ी सर्दी की मार खाकर लौट आया, फिर चेष्टा करके देखूँगा। रविवार को काशीधाम की ओर प्रस्थान करूँगा – यहाँ के लोग मुझे नहीं छोड़ रहे हैं, अन्यथा बाबाजी के दर्शन का मेरा शौक अब मिट चुका है। मैं तो आज ही चला जाता। खैर, रविवार को जा रहा हूँ। आपका ऋषीकेश जाने का क्या हुआ? पुनश्च – यह स्थान बड़ा स्वास्थ्यप्रद है, यही इसका गुण है।"[९]

कुछ दिनों के भीतर ही स्वामीजी को पवहारी बाबा के दर्शन तथा बातचीत करने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसी का उल्लेख करते हुए वे ४ फरवरी को प्रमदाबाबू के नाम चौथे पत्र में लिखते हैं – "आपका पत्र मिला है और बड़े भाग्य से बाबाजी का दर्शन हुआ। ये बहुत बड़े महापुरुष हैं। बड़ी विचित्र बात है कि इस नास्तिकता के युग में ये भक्ति तथा योग की अद्भुत क्षमता के अलौकिक उदाहरण हैं। मैं उनके शरणागत हुआ और उन्होंने मुझे आश्वासन

७. विश्वपथिक विवेकानन्द (बँगला), उद्बोधन कार्यालय, पृ. १८३

८. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड १, पृ. ३५२-५३; **९.** वही, पृ. ३५३-४

भी दिया है, जो हर किसी के भाग्य में नहीं जुटता। बाबाजी की इच्छा है कि मैं कुछ दिन यहीं ठहरूँ, वे मेरा कल्याण करेंगे। अत: इन महापुरुष की आज्ञानुसार मैं कुछ दिन और यहाँ ठहरूँगा। नि:सन्देह इससे आप भी आनन्दित होंगे। बात बड़ी विचित्र है, पत्र में नहीं लिखूँगा, प्रत्यक्ष मिलने पर बताऊँगा। इन लोगों की लीला देखे बिना शास्त्रों पर पूरा-पूरा विश्वास नहीं होता।

पुनश्च – इस पत्र की बातें गोपनीय हैं।''[१०]

इसी दौरान स्वामी अखण्डानन्द जी अपने तिब्बत-भ्रमण से लौटकर काश्मीर पहुँचे। राजधानी श्रीनगर से ४ फरवरी को उन्होंने स्वामीजी के नाम अपने पत्र में लिखा –

श्रीनगर, काश्मीर

४. २. १८९०

''Venerable Narendranath, (आदरणीय नरेन्द्रनाथ),
दादा महाराज को प्रणाम-पत्र

बहुत दिन हुए – आपका दर्शन नहीं मिला। मठ से निकलने के बाद से आज यहाँ वराहनगर मठ से क्रमश: दो आशीर्वादी पत्र मिले। दूसरे पत्र में दादाभाई निरंजन के मुख से आपको मलेरिया होने की बात सुनकर बड़ा कष्ट हुआ। आपको दुबारा मलेरिया होने की बात सुनकर बड़ा कष्ट होता है, बड़ा दुख होता है। अब कैसे हैं? जानने की बड़ी उत्सुकता है।

१ मई के पत्र में लिखा था कि आप राखाल दादा के साथ वाराणसी में हैं। गाजीपुर कब पहुँचे? वहाँ की आबोहवा कैसी है? आपके साथ और कौन है? गाजीपुर की जलवायु यदि अच्छी लगे, तो वहीं कुछ दिन विश्राम कीजिये। मैं क्या जानता हूँ, जो आपसे कुछ कहूँगा? केवल मलेरिया की बात सुनकर मन में बड़ा कष्ट होने के कारण ऐसा कह रहा हूँ। जैसा रहने से स्वस्थ महसूस हो, वहीं रहियेगा।

बहुत दिनों से आपका दर्शन नहीं मिला। अब तो शरीर में कोई रोग नहीं है? आप कैसे हैं? आपके हस्ताक्षरों में कुशलता का समाचार पाकर बड़ी खुशी होगी। दया करके लिखियेगा।

मेरे असंख्य प्रणाम लीजियेगा। और सभी को इस दास के असंख्य प्रणाम सूचित कीजियेगा।''

Venerable Narendranath – at Gazipur.''[११]

६ फरवरी को कलकत्ते के बलराम बोस के नाम स्वामीजी ने जो अपना पाँचवाँ पत्र लिखा था, वह अब तक हिन्दी में अप्रकाशित था। उक्त पत्र में वे लिखते हैं – ''पवहारी बाबा के साथ भेंट हुई – बड़े अद्भुत महात्मा हैं। विनय, भक्ति तथा योग की प्रतिमूर्ति हैं। आचारी वैष्णव हैं, परन्तु द्वेषबुद्धि से रहित हैं। चैतन्यदेव के प्रति बड़ी भक्ति है। परमहंसदेव के विषय में कहते हैं, ''एक अवतार थे।'' मुझसे बड़ा स्नेह करते हैं। उनके अनुरोध पर कुछ दिन इस स्थान में रहूँगा। ये २ से ६ महीने तक लगातार समाधिस्थ रहते हैं। बँगला पढ़ सकते हैं। अपने कमरे में परमहंसदेव का एक चित्र रखा है। आजकल साक्षात् नहीं मिलते। द्वार के पीछे से बोलते हैं। इतनी मधुर आवाज मैंने पहले कभी नहीं सुनी। इनके बारे में और भी बहुत-सी बातें हैं – अभी नहीं कहूँगा। इनके लिये चैतन्य-भागवत की एक प्रति, जहाँ से भी मिले, भेजियेगा। गगनचन्द्र राय, अफीम विभाग, गाजीपुर – इस पते पर भेजियेगा। इसमें भूल न हो। ये आप लोगों के एक आदर्श वैष्णव हैं। बहुत बड़े विद्वान् हैं, परन्तु पकड़ में नहीं आते। इनके भी एक हृदय (अर्थात् बड़े भाई) साथ रहते हैं – उन्हें भी भीतर प्रवेश नहीं मिलता। वैसे वे हृदय के समान ... नहीं हैं। चैतन्य-मंगल यदि प्रकाशित हुआ हो, तो उसे भी भेजियेगा। इनके स्वीकार कर लेने पर अपना परम सौभाग्य मानियेगा। ये किसी से भी कुछ ग्रहण नहीं करते। क्या खाते हैं और क्या करते हैं – कोई भी नहीं जानता। मैं यहाँ हूँ, यह बात किसी से न कहियेगा और मुझे भी किसी का समाचार मत दीजियेगा। मैं एक महत्त्वपूर्ण कार्य में व्यस्त हूँ।''[१२]

७ फरवरी को प्रमदाबाबू के ही नाम अपने छठें पत्र में वे लिखते हैं – ''अभी-अभी आपका पत्र पाकर अतीव आनन्द का बोध हुआ। बाबाजी आचारी वैष्णव प्रतीत होते हैं; उन्हें योग, भक्ति तथा विनय की प्रतिमा कहना होगा। उनकी कुटिया के चारों ओर दीवारें हैं। उनमें द्वार बहुत कम हैं। परकोटे के भीतर एक बड़ी गुफा है, जहाँ वे समाधिस्थ पड़े रहते हैं। गुफा से बाहर आने पर ही वे दूसरों से बातचीत करते हैं। किसी को यह मालूम नहीं कि वे क्या खाते-पीते हैं। इसीलिए लोग उन्हें पवहारी (केवल वायु का आहार करनेवाले) बाबा कहते हैं। एक बार जब वे पाँच साल तक गुफा से बाहर नहीं निकले, तो लोगों ने समझा कि उन्होंने देह त्याग दिया है। पर वे फिर उठकर आये। परन्तु अब वे लोगों के सामने निकलते नहीं और बातचीत भी द्वार के पीछे से ही करते हैं। इतनी मीठी वाणी मैंने कहीं नहीं सुनी, वे प्रश्नों का सीधा उत्तर नहीं देते, बल्कि कहते हैं, 'दास क्या जाने!' पर बात कहते-कहते उनके मुख से मानो अग्नि के समान तेजस्वी वाणी निकलती है। मेरे बहुत आग्रह करने पर उन्होंने कहा, 'कुछ दिन यहाँ ठहरकर मुझे कृतार्थ कीजिए।' परन्तु वे इस तरह कभी नहीं कहते। इसलिए मैंने यह समझा है कि वे मुझे आश्वासन देना चाहते हैं और जब कभी मैं हठ करता हूँ, तो वे मुझे ठहरने के लिए कहते हैं। आशा में अटका पड़ा हूँ। नि:सन्देह ये बड़े विद्वान् हैं, पर कुछ प्रकट नहीं होता। शास्त्रोक्त कर्मकाण्ड करते हैं। पूर्णिमा से संक्रान्ति

१०. वही, खण्ड १, पृ. ३५४; **११.** शरणागति ओ सेवा (बँगला), कलकत्ता, सं. १९९७, पृ. ३७

१२. The Complete Works., खण्ड ९, पृ.३; बँगला पत्रावली, पृ. २२

तक होम होता रहता है। अत: यह निश्चय है कि इस दौरान वे गुफा में प्रवेश नहीं करेंगे। मैं उनसे अनुमति क्या माँगूँ? वे सीधा उत्तर नहीं देंगे। 'दास का भाग्य है' आदि कहते रहेंगे। यदि आपकी इच्छा हो, तो पत्र पाते ही चले आइये; अन्यथा उनका देहत्याग हुआ, तो आपको बड़ा खेद रह जायगा। दो दिनों में दर्शन करके अर्थात् आड़ से बातें करके लौट सकते हैं। मेरे मित्र सतीश बाबू सहर्ष आपका स्वागत करेंगे। पत्र पाते ही आप सीधे चले आइये। इसी दौरान मैं बाबाजी से कहूँगा। पुनश्च – इनका संग न मिले, तो भी यह निश्चित है कि ऐसे महापुरुष के लिए कोई भी कष्ट उठाना निरर्थक न होगा। अधिक क्या लिखूँ।''[१३]

बलराम बोस के नाम **११ फरवरी** को लिखा हुआ, अब तक हिन्दी में अप्रकाशित स्वामीजी का सातवाँ पत्र इस प्रकार है – ''आपके द्वारा भेजी हुई पुस्तक प्राप्त हुई। ऋषीकेश में काली (स्वामी अभेदानन्द) को फिर बुखार हुआ है – लगता है मलेरिया हुआ है। जिन्हें पहले कभी यह बुखार नहीं हुआ, उन्हें होने पर जल्दी नहीं छोड़ता। मैंने भी पहली बार यह बुखार आने पर ऐसे ही कष्ट भोगा था। काली को इसके पहले कभी यह बुखार नहीं आया था।... (अमुक) कहाँ है?

''मैं कमर की पीड़ा से कष्ट भोग रहा हूँ – यह इलाहाबाद में शुरू हुआ था। बीच में ठीक हो गया था। अब फिर होने लगा है। अत: मुझे कुछ दिन यहीं रहना होगा। बाबाजी का भी बड़ा अनुरोध है कि मैं कुछ दिन यहीं रहूँ। कच्ची रोटियों की जो बात आपने लिखी है, वह सत्य है। परन्तु साधु ऐसे ही तो मरता है ! कोई घड़े-सकोरे के जैसा थोड़े ही मरता है। इस बार मैं शीघ्र ही अपने शरीर की इस दुर्बलता पर विजय पा लूँगा। और मर जाने पर भी अच्छा ही है। जो जितना जल्दी जाता है, उसके लिये उतना ही अच्छा है।''[१४]

१३ फरवरी को प्रमदाबाबू के नाम गाजीपुर से लिखा हुआ स्वामीजी का आठवाँ पत्र इस प्रकार है – ''आपकी शारीरिक अस्वस्थता के समाचार से चिन्तित हूँ। मेरी कमर में भी एक तरह का दर्द बना हुआ है। हाल ही में वह काफी बढ़ गया है और कष्ट दे रहा है। दो दिन से मैं बाबाजी के पास नहीं जा सका, इसलिए उनके यहाँ से एक व्यक्ति मेरा समाचार लेने को आया था – अत: आज जाऊँगा। उन्हें आपके असंख्य प्रणाम निवेदन करूँगा। उनके मुख से अग्नि के समान प्रखर वाणी निकलती है – अर्थात् अति अद्भुत गूढ़ भक्ति तथा निर्भरता की बातें निकलती हैं – ऐसी अद्भुत तितिक्षा तथा विनयशीलता मैंने कभी नहीं देखी। आप निश्चित रूप से जानियेगा कि यदि मुझे कुछ मिला, तो उसमें आपका हिस्सा अवश्य होगा। अधिक क्या लिखूँ !''[१५]

१३. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड १, पृ. ३५५; **१४.** The Complete Works., खण्ड ९, पृ. ४; **१५.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड १, पृ. ३५६

अगले दिन **१४ फरवरी** को वे पुन: उन्हीं के नाम अपने नौवें पत्र में लिखते हैं – ''कल मैंने आपको जो पत्र लिखा, शायद उसमें मैं आपको भाई शरत् (स्वामी सारदानन्द) के पत्र को भेजने के लिए लिखना भूल गया था; कृपया उसे भेज दीजियेगा। मुझे भाई गंगाधर का एक पत्र मिला। वह आजकल श्रीनगर, काश्मीर के रामबाग समाधि में है। मैं कमर की व्यथा से बड़ा पीड़ित रहा हूँ। पुनश्च – राखाल और सुबोध, ओंकारनाथ, गिरनार, आबू, बम्बई तथा द्वारका का दर्शन करने के बाद अब वृन्दावन में हैं।''[१६]

१४ फरवरी को ही बलराम बोस के नाम अपने दसवें पत्र में वे लिखते हैं – ''मुझे आपका शोकपूर्ण पत्र मिला। मैं अभी यहाँ से शीघ्र न निकल सकूँगा। बाबाजी के अनुरोध को ठुकरा देना असम्भव है। आपको पछतावा है कि साधुओं की सेवा करने से आपको कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। बात ठीक भी है और नहीं भी। चिर आनन्द की दृष्टि से तो यह सच है, पर यदि आप उस ओर देखें, जहाँ से आपने चलना आरम्भ किया था, तो आपको पता चलेगा कि पहले आप पशु थे, अब मनुष्य हैं; और आगे चलकर आप देवता तथा ईश्वर होंगे। परन्तु इस प्रकार का पश्चात्ताप कि 'मेरा क्या हुआ', 'मेरा क्या हुआ' – बड़ा अच्छा है, भावी उन्नति के लिये आशास्वरूप है, अन्यथा कोई उन्नति नहीं कर सकता। जो चुटकी बजाते ही सोचता है कि उसने ईश्वर को पा लिया, उसका वहीं सब समाप्त हो जाता है। आपको जो सर्वदा याद आता है कि 'मेरा क्या हुआ', आप निश्चित जानिये कि आप धन्य हैं – आपका विनाश नहीं होगा।

''माता ठाकुरानी (श्री सारदा देवी) को (गाँव से कलकत्ते) लाने के विषय में गिरीश बाबू के साथ आपका कुछ मतभेद हुआ है; गिरीश बाबू ने लिखा है – इस विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है। परन्तु आप स्वयं बड़े समझदार व्यक्ति हैं।

''कार्यसिद्धि का प्रमुख उपाय धैर्य है – यह आपने ठीक ही समझा है, इस विषय में हम अपरिपक्व बुद्धिवाले बालकों को नि:सन्देह आपसे बहुत-कुछ सीखना होगा। वाराणसी में एक दिन वाद-विवाद के दौरान मैंने कहा था कि योगीन-माँ के कन्धों पर बहुत ज्यादा बोझ न डाला जाय। इसके अतिरिक्त इस विषय में मैं और कुछ नहीं जानता और जानने की इच्छा भी नहीं है। माता ठाकुरानी की जैसी इच्छा होगी, वैसा ही करेंगी। क्या मैं कोई नराधम हूँ, जो उनसे सम्बन्धित किसी विषय में कुछ कहूँगा? योगीन-माँ को जो मैंने मना किया था, वह यदि दोषपूर्ण हुआ हो, तो उसके लिये मैं लाखों बार क्षमा माँगता हूँ। आप तो विवेक-सम्पन्न हैं, आपसे मैं और क्या कहूँगा? आदमी के कान तो दो हैं, पर मुख एक ही होता है। विशेषकर आप बड़े स्पष्टवक्ता हैं और बड़े-बड़े वादे

१६. वही, पृ. ३५६

करने के पक्ष में नहीं हैं। इस कारण मैं भी कभी-कभी आपके ऊपर नाराज हो जाता हूँ, परन्तु विचार करने पर मैंने पाया कि आपने ही विवेकपूर्ण कार्य किया है। 'Slow but sure' (धीरे -धीरे, परन्तु दृढ़ता के साथ कदम बढ़ाना चाहिये।)

" 'What is lost in power is gained in speed.' (जो शक्ति का अपव्यय प्रतीत होता है, वस्तुत: वह गति में वृद्धि करता है); तो भी इस संसार में सब कुछ शब्दों पर ही निर्भर है। (विशेषत: आप जैसे मितभाषी के) शब्दों में निहित भावों को समझने की अन्तर्दृष्टि सबके पास नहीं होती और किसी व्यक्ति का काफी काल संग किये बिना उसे नहीं समझा जा सकता। इस बात को ध्यान में रखकर और श्रीगुरुदेव तथा माता ठाकुरानी का स्मरण करके – निरंजन ने यदि आपको कोई कटु वाक्य कहा हो, तो उसे क्षमा कर दीजियेगा। 'धर्म – दलों या बाह्याडम्बर में नहीं है' – श्रीगुरुदेव की इन बातों को आप भूल क्यों जाते हैं? आप अपनी क्षमता के अनुसार कीजिये, परन्तु उसका क्या उपयोग हुआ – उसके अच्छे-बुरे पर विचार करने का अधिकार सम्भवत: हम लोगों को नहीं है।... गिरीश बाबू को आघात लगा है, इस समय माताजी की सेवा करने से उन्हें बहुत शान्ति मिलेगी। वे बड़े तीक्ष्ण-बुद्धि हैं। उनके विषय में मैं भला क्या विचार करूँगा। श्री गुरुदेव आपके ऊपर पूर्ण विश्वास करते थे। आपके घर के सिवाय अन्यत्र कहीं भी अन्न आदि ग्रहण नहीं करते थे; और सुना है कि माताजी भी आप पर पूरा विश्वास करती हैं – इन सब बातों को ध्यान में रखकर हम जैसे चंचलबुद्धि बालकों के (अपने ही पुत्र द्वारा किये गये अपराध के समान) सारे अपराध आप सहन और क्षमा करेंगे – अधिक क्या लिखूँ!

"पत्र पाने के बाद इस बात की सूचना देंगे कि (श्रीरामकृष्ण का) जन्मोत्सव कब होगा। मैं इस समय कमर की पीड़ा से परेशान हूँ। कुछ ही दिनों में यह स्थान बड़ा रमणीक हो जायेगा – मैदानों में कोस-दर-कोस गुलाब के फूल खिल उठेंगे। सतीश कह रहा है कि उस समय वह महोत्सव के उपलक्ष्य में कुछ ताजे फूल और डालियाँ भेजेगा। योगेन कहाँ है और कैसा है? बाबूराम कैसा है? सारदा का चित्त क्या अब भी वैसे ही चंचल है? गुप्त क्या कर रहा है। तारक दादा, गोपाल दादा आदि को मेरा प्रणाम कहियेगा। मास्टर के भतीजे की कहाँ तक पढ़ाई हुई? राम, फकीर और कृष्णमयी को मेरा आशीर्वाद आदि देंगे। उन लोगों की लिखाई-पढ़ाई कैसी चल रही है? भगवान करें आपका पुत्र मनुष्य बने, कायर न हो। तुलसी बाबू को मेरा सप्रेम नमस्कार कहियेगा। अब सान्याल स्वयं अपनी जिम्मेदारी उठा सकेगा या नहीं? चुनीबाबू कैसे हैं?

"बलराम बाबू, माताजी यदि आ गयी हों, तो उनसे मेरा कोटि-कोटि प्रणाम कहियेगा और उन्हें मुझे यह आशीर्वाद देने के लिए प्रार्थना कीजियेगा कि – या तो मैं अटल अध्यवसायी रहूँ, अथवा यदि मेरे इस शरीर से वह सम्भव न हो, तो इसका शीघ्र अवसान हो जाय।"[१७]

१४ फरवरी को ही स्वामी सदानन्द के नाम अपने ग्यारहवें पत्र में वे लिखते हैं – "आशा है तुम स्वस्थ हो। अपनी साधनाओं में लगे रहो और अपने को सबका विनम्र दास समझकर सेवा करते रहो। जिनके पास तुम हो, उनका दासानुदास बनने और उनकी चरणरज लेने का भी मैं पात्र नहीं हूँ – इस भाव से उनकी सेवा करो और उनके प्रति भक्तिभाव रखो। यदि वे प्रसंगवश कभी तुमको डाँट भी दें या कभी विवश होकर मार भी बैठें, तो भी तुम्हें क्रोधित नहीं होना चाहिए। स्त्रियों के साथ कभी न मिलना। क्रमश: शरीर को सहनशील बनाओ और मिली हुई भिक्षा से ही गुजर-बसर करने का अभ्यास करो। जो भी रामकृष्ण का नाम ले उसे अपना गुरु समझो। स्वामी तो सभी हो सकते हैं, पर सेवक होना कठिन है। विशेषत: तुम शशी (स्वामी रामकृष्णानन्द) का अनुसरण करो। यह निश्चित जानो कि बिना दृढ़ गुरुनिष्ठा और अटल धैर्य तथा अध्यवसाय के कुछ भी नहीं हो सकता। पूर्ण सच्चरित्रता का पालन करो, उससे तिल भर भी इधर-उधर डिगे कि पतन के गर्त में गिरे।"[१८]

१७. वही, खण्ड १, पृ. ३५७-५८ (इस पत्र के कुछ अंश हिन्दी में नहीं थे, उनका अनुवाद बँगला 'पत्रावली' से दिया जा रहा है।)

१८. वही, खण्ड १, पृ. ३५८-५९

❖ **(क्रमशः)** ❖
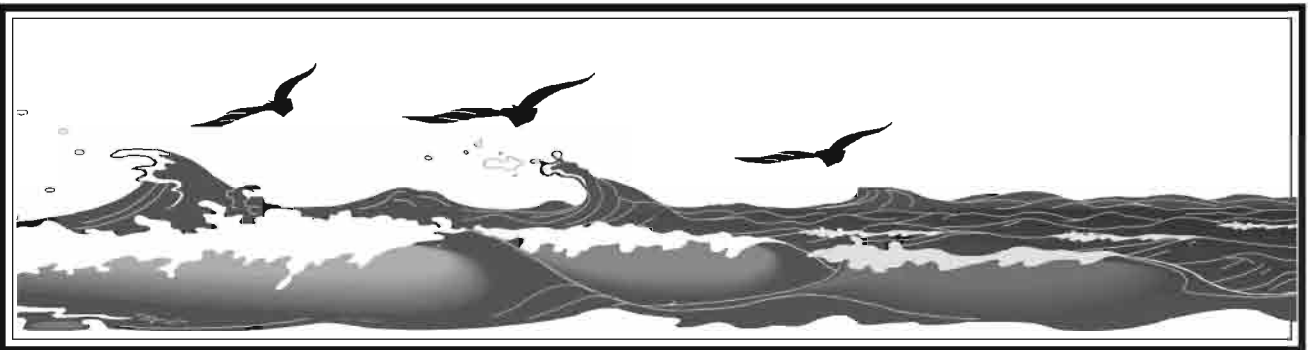
युवा अपनी शक्ति का सदुपयोग करें !

डॉ. प्रकाश नारायण शुक्ल

(लेखक रायपुर, छत्तीसगढ़ के प्रसिद्ध मनोरोग विशेषज्ञ हैं। उन्होंने यह युवा-मन में क्रान्ति मचाने वाला यह व्याख्यान विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में जनवरी २०१२ में आयोजित युवा-सम्मेलन में दिया था।)

बहुधा बड़े-बूढ़ों को यही कहते सुना जाता है कि – "मनुष्य के जीवन में यौवन एक अद्भुत घटना है, परन्तु युवक अपनी नासमझी के कारण इसे व्यर्थ ही गवाँ देते हैं, इसे नष्ट कर डालते हैं।"

जब तक युवावस्था है, तब तक युवक यह समझ ही नहीं पाते कि युवावस्था प्रकृति की बहुमूल्य भेंट है। यौवन ऊर्जा का अजस्र स्रोत है। जैसे गंगा नदी गंगोत्री से नाचती, झूमती, कल-कल करती, इठलाती, बल खाती चली जा रही हो। उद्दाम यौवन में ऊर्जा का कभी न समाप्त होनेवाला भण्डार होता है, परन्तु वह अनियंत्रित, अनियोजित एवं दिशाहीन होता है। यदि उसे रचनात्मक दिशा की ओर मोड़ दिया जाय, तो यौवन का समुचित उपयोग हो सकता है।

यौवन अनन्त सम्भावनाओं से परिपूर्ण होता है। भविष्य के जीवन का आधार इसी पर निर्भर करता है। यदि इस ऊर्जा को रचनात्मक दिशा में न मोड़ पाए, तो उसके परिणाम भयानक हो सकते हैं। वह ऊर्जा विनाश एवं विध्वंस की ओर मुड़ जाती है, जिसका परिणाम होता है भटकाव। व्यक्ति भटककर अपराध की राह पकड़ सकता है, नशीले पदार्थों के व्यसन में पड़कर वह स्वयं को नष्ट कर सकता है अथवा आतंकवाद को गले लगा सकता है।

इसी ऊर्जा को यदि सृजन की राह में ले जाया जाय, तो वह ऊर्जा जीवन को उच्च शिखरों पर पहुँचा सकती है। उसका व्यक्तित्व पूरी मानवता के लिए आदर्श बन सकता है। वह वैज्ञानिक, कलाकार या उच्च कोटि का खिलाड़ी बनकर स्वयं को तथा पूरे राष्ट्र को गौरवान्वित कर सकता है।

आज के युवक को हर प्रकार की स्वच्छन्दता मिली हुई है। उसे सभी सुविधाएं उपलब्ध हैं। उसे भरपूर स्वतंत्रता है। उसकी समस्या कुछ अलग प्रकार की है। उसकी समस्या मनोवैज्ञानिक है। पिछली पीढ़ी के युवकों की तुलना में वह अधिक तनाव अनुभव कर रहा है। इसके कारण वह असुरक्षा की भावना से पीड़ित होता जा रहा है। क्योंकि कुछ युवकों को बड़ी-बड़ी उपाधियाँ भी उसे अभी आजीविका नहीं दिला पा रही हैं। मानों उसका यौवन का भवन भुरभुरी रेत की नींव पर खड़ा हो, जो कभी भी ढह सकता है।

संचार के माध्यम आज इतने, गतिमान हो गए हैं कि युवकों के लिए यह संसार छोटा हो गया है। वे अधिक अनुभवी हो गए हैं। पिछली पीढ़ी की तुलना में उनकी जानकारी कई गुना अधिक है। यह अन्तर्राष्ट्रीयकरण का युग है। इस युग में युवावर्ग की बौद्धिक क्षमता भी अधिक है। वे अधिक प्रतिभाशाली हैं। परन्तु इस युग में प्रतिस्पर्धा इतनी अधिक है कि जीवन एक सतत् संघर्ष बनता जा रहा है। कुछ युवक यौवन के आरंभिक अवस्था में ही थके-थके से दिखाई देने लगे हैं, मानो कली प्रस्फुटित होने से पहले ही मुरझा गई हो। वैसे युवक गहरी उदासी से ग्रस्त होने लगे हैं।

बहुधा लोग युवकों पर यह आरोप लगाते हैं कि वह भरी जवानी में पथभ्रष्ट हो गए हैं। मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। बड़े-बूढ़े लोगों ने उनके लिए सही मार्ग बनाया ही नहीं है, सही मार्ग पर चलना नहीं सिखाया, तो वे भटकेंगे ही। अत: यदि वे भटक गए हैं, तो उनके लिये बड़े-बूढ़े ही जिम्मेदार हैं। यह समाज और हमारी पूरी-की-पूरी शिक्षा-व्यवस्था जिम्मेदार है।

युवावर्ग सदा सही रास्ते पर चलना चाहता है, पर हमारी सारी व्यवस्था ही उन्हें भटका देती है, पूरा तंत्र उन्हें बेइमानियाँ सिखा रहा है। कोई तो उन्हें सत्य का मार्ग बताए !

हमारे देश में युवा-वर्ग का भटकना उसकी विवशता है। किन्तु यह ध्यान रखें कि भटकाव कहीं नहीं ले जाता, अत: अपने गंतव्य को, उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये उसे सही राह पर आना ही पड़ेगा।

युवक जब कभी भी आगे बढ़ना चाहता है, तो वह कठिनाई में पड़ जाता है। क्योंकि वह देखता है कि या तो रास्ता ही नहीं है, या है भी, तो वह अवरुद्ध है। वह आगे नहीं बढ़ पाता, रुक जाता है और लोग ऊपर से उस पर आरोप लगाते हैं कि वह भटक गया है। स्वाभाविक है कि युवा-वर्ग आक्रोश से भर जाता है और अपने वरिष्ठों को सम्मान नहीं दे पाता।

फिर बड़े-बूढ़े उसे बड़े-बड़े उपदेश देने लग जाते हैं कि जीवन की राह पर किस तरह चला जाए। हमने रास्ते बनाए भी, तो स्वर्ग जाने के। अजीब नासमझी है ! हमें स्वर्ग में नहीं, इस धरती पर ही चलने के लिये रास्ते चाहिये। परन्तु इस रास्ते को बनाने की जिम्मेदारी किसकी है? कौन बनाएगा इसे? बड़े-बूढ़े लोग तो युवा-वर्ग का विरोध कर रहे हैं और दूसरी तरफ युवा-वर्ग के पास अनुभव की कमी है। वे अनुभवहीन हैं।

रास्ते बनाने के दो ही उपाय हैं। पहला अनुभव और दूसरा शक्ति। अनुभव बड़े-बूढ़ों के पास है और शक्ति युवा-वर्ग के पास। यदि दोनों ही वर्गों के लोग एक दूसरों को समझने का प्रयास करें और एक हो जाएँ, तो समस्या का समाधान तत्काल हो सकता है। बड़े लोगों को युवा-वर्ग के प्रति सहानुभूति दिखाना होगा। अपने अनुभवों से उन्हें लाभ पहुँचाना होगा। युवा-वर्ग के साथ एक मंच पर आकर उनकी ऊर्जा को, उनकी शक्ति को सृजनात्मक दिशा की ओर प्रवाहित करना होगा। युवकों को भी श्रद्धा के साथ अपने वरिष्ठ लोगों के पास जाकर उनसे शिक्षा ग्रहण करनी होगी। तभी युवा-वर्ग की शक्ति सुनियोजित एवं रचनात्मक हो पाएगी।

पुरानी पीढ़ी यदि युवा वर्ग की निरन्तर निन्दा-भर्त्सना करती रहे, तो वह पुरानी पीढ़ी को कैसे सम्मान और आदर देगा? निरन्तर गलतियाँ निकालने वालों को निन्दा-बुराई करने वालों को, कोई आदर और सम्मान नहीं देता। बड़े-बूढ़ों को युवाओं की निन्दा-बुराई करना बन्द करना पड़ेगा। उसके बाद ही दोनों पीढ़ियों के बीच एकता तथा सामंजस्य स्थापित हो सकेगा।

बड़े-बूढ़ों के द्वारा युवकों की निन्दा, युवा-वर्ग में उनके प्रति वितृष्णा एवं घृणा उत्पन्न करती है। युवक उन्हें आदर एवं सम्मान नहीं देते। बहुधा लोग कहते हैं कि युवा-वर्ग के मन में बड़े-बूढ़ों के प्रति अनादर भरा है। मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ। युवा-वर्ग हमेशा बड़ों का आदर एवं सम्मान करना चाहता है, परन्तु आज आदर देने योग्य व्यक्ति बड़ी कठिनाई से मिलते हैं।

समाज कहता है – मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। परन्तु दुख की बात है कि कुछ लोग इस आदर देने के लायक नहीं हैं। लेकिन अधिकांश अभिभावक और गुरु अपनी सन्तानों, शिष्यों का कल्याण ही चाहते हैं। हमारी पुरातन परम्परा रही है – सर्वत्रं जयं इच्छेत, पुत्रात् शिष्यात् पराजयम्। इसलिये युवकों को सबका यथायोग्य सम्मान करना चाहिये।

माता-पिता यदि आदर्श माता-पिता की भूमिका में होंगे, तभी आदर्श पुत्र की उनकी कामना पूरी होगी। शिक्षक भी यदि एक आदर्श शिक्षक की भूमिका में होंगे, तभी उनका शिष्य भी आदर्श शिष्य होगा।

माता-पिता-शिक्षक सभी कहते हैं कि आज का युवा वर्ग बड़ों को आदर नहीं देते। मैं कहता हूँ कि आदरणीय कार्य करने से स्वयं आदर मिलता है। आदर माँगते ही आप आदर पाने की पात्रता खो देते हैं। आदर पाने योग्य व्यक्ति आदर माँगता ही नहीं। उसे बिना माँगे मिल जाता है। जिसे आदर देना पड़े, वह व्यक्ति आदरणीय नहीं है। आदर देना क्या कोई विवशता है? वह तो प्रेम का हार्दिक सम्बन्ध है।

एक पिता की बात उनके पुत्र ने नहीं मानी। यही रायपुर में मुझसे एक वरिष्ठ डॉक्टर हैं। उन्होंने प्रेम-विवाह किया है। उनका पुत्र भी किसी युवती से प्रेम करने लगा और उसी से विवाह करने की उसने घोषणा कर दी। उसके माता-पिता आहत हुए। मुझसे कहा कि कृपा कर आप हमारे पुत्र को समझाइये कि वह ऐसा न करे। मैंने सोचा कि पुत्र, पिता का ही तो अनुकरण और अनुसरण करेगा।

बुद्धिमत्ता का दुरुपयोग खतरनाक है। किन्तु सद्बुद्धि वाला व्यक्ति अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त कर लेगा। वह किसी की सहायता की आशा नहीं करता। बेटा यदि गोबर-गणेश होगा, तो वह आज्ञाकारी भले ही हो, वह अपने पिता का अन्धभक्त होगा। पिता के किसी बात पर असहमत होने के लिए बुद्धि चाहिए। असहमत होने के लिये कारण बताने पड़ेंगे, तर्क देने होंगे, पिता के साथ वाद-विवाद के लिए तैयार होना होगा। अधिकांश पिता स्वयं को ज्ञानी समझते हैं। वे अहंकार से भरे रहते हैं, अपने पुत्रों की बात नहीं सुनते।

आज का युवा वर्ग भटका नहीं है, बल्कि अतिरिक्त ऊर्जा से लबालब भरा है। उनमें से ऊर्जा छलक रही है। उसे हम सृजन की राह पर नहीं ले जा पा रहे हैं। आज का युवा वर्ग अधिक बुद्धिमान है, अधिक जीवन्त है, सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाने के लिए व्याकुल है।

युवक के गुण

पहले यह समझ लें कि युवक का अर्थ क्या है। क्या वह शारीरिक अवस्था है या मानसिक स्थिति? मुझे उस युवक को युवक कहने में झिझक होगी, जिसके भीतर विद्रोह न हो तथा जो अन्याय के समाने झुक जाता हो।

युवा होने का एक ही अर्थ है, जिसकी आत्मा विद्रोही हो, जो झुकना नहीं टूटना जानती हो। जो परिवर्तन चाहता है। जो जीवन को नई दिशाओं में, नए आयामों में ले जाने को हमेशा तत्पर हो। क्रान्ति की उद्दाम लालसा ही युवा होने का लक्षण है।

बूढ़ा होने का क्या अर्थ है? जो जीवन को स्वीकार न करे, जो हमेशा जीवन के अन्धकारपूर्ण पक्ष की बातें करे, जो घोर निराशावादी हो, जिसे दो रातों के बीच का दिन छोटा प्रतीत होता हो। जो गुलाब की सुन्दरता और सुगन्ध की अवहेलना करे और काँटों को गिने, उनकी बुराई करे। ऐसे लोग जीवन की ओर नहीं, मृत्यु की और उन्मुख होते हैं। इन अर्थों में कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाँधी, अन्ना हजारे जैसे लोगों को बूढ़ा नहीं कहा जा सकता। युवा होने का अर्थ है जीवन का सामना करना। जो जीवन के साथ दो-दो हाथ करने को तैयार हो, वही युवक है।

युवक वह है, जो बाधा को चुनौती समझे, बाधाओं को रास्ता समझे, उन्हें सीढ़ियाँ बना ले। वह ऊपर पहुँचकर, अपने गंतव्य पर जाकर अपना सारा श्रम भूल जायेगा। तब एक नई घटना घटने लगती है। श्रम-बिन्दु आनन्दाश्रु में बदल जाते हैं। उद्देश्य को पा लेने के बाद आनन्द ही आनन्द बचा रह जाता है। अद्‌भुत शान्ति की अनुभूति होती है।

चुनौतियों को स्वीकार नहीं करना पलायन है, कायरता है। जीवन प्रतिपल चुनौती है। कायरता या पलायन हमारी आत्मा का हनन कर देता है। समाज, पलायन को बहुधा युक्तिसंगत बनाने का प्रयास करता है। बल्कि कई बार तो, उसे महिमामण्डित करने लग जाता है। पलायनवाद अर्थात् अपने दायित्वों से बचना। पलायनवाद एक प्रकार से आत्महत्या है। असल में पलायनवादी व्यक्ति में आत्मविश्वास और दृढ़ संकल्प की कमी होती है।

समाज की मुख्य-धारा में धर्म, साहित्य, संगीत, सभी प्रकार की कलायें एवं दर्शनशास्त्र होते हैं। शेष सभी विषय जैसे, विज्ञान, राजनीति, ज्योतिष, गणित, चिकित्सा-विज्ञान इत्यादि समाज की सहायक शाखाओं के समान हैं। आज दुर्भाग्य यह है कि राजनीति ही समाज की मुख्य-धारा बनने का प्रयास कर रही है। इसके फलस्वरूप समाज का पतन हो रहा है। समाज के सभी तंत्र चालाकी, घृणा, महत्त्वाकांक्षा, हिंसा, ईर्ष्या, द्वेष, पदलिप्सा, हीनता, श्रेष्ठता, इत्यादि से भरे हुये हैं। वहाँ निर्लज्जता की सारी सीमायें लाँघी जा चुकी हैं। सब एक-दूसरे को गलत प्रमाणित करने के लिये आतुर हैं। सभी लोग राजनीतिज्ञों की भाँति इसी चूहा-दौड़ में सम्मिलित हो गए हैं। अजीब पागलपन है ! जिस दुर्व्यस्था से समाज पीड़ित है, उसी दुर्व्यवस्था को हम इस युवा वर्ग पर थोपने को व्यग्र हैं।

युवकों को महत्त्वाकांक्षा की शिक्षा दी जा रही है। महत्त्वाकांक्षी बनो, पहले नम्बर पर आओ, स्वर्ण-पदक लाओ, सबको पीछे छोड़ दो, चाहे किसी का सिर कुचलना पड़े, चाहे किसी के प्राण ही क्यों न लेना पड़े। साम, दाम, दण्ड, भेद – सभी अपनाओ, पर अव्वल आओ।

हमारे देश में अधिकांशत: युवा-शक्ति को सही दिशा में अग्रसर नहीं कराया जा रहा है। इससे हमारे युवा एवं हमारा देश जीवंत प्रतीत नहीं हो रहे हैं। जीवन में उत्साह और उमंग नहीं रह गया है। आँखों में, प्राणों में, हृदय में जिजीविषा की जो उद्दाम लालसा होनी चाहिये वह दिखाई नहीं देती। जीवन के प्रारम्भ में ही मानो पतझड़ आ गया हो, अवसाद ने घनीभूत होकर मानो ढँक लिया हो। सूर्योदय होते ही मानों ग्रहण लग गया हो।

जर्मन दार्शनिक नीत्से बड़ी मजेदार बात कहा करते थे – "आदमी मर जाता है बहुत पहले, परन्तु दफनाया जाता है तीस-चालीस वर्षों बाद।" हमारी जिज्ञासा की हत्या कर दी जाती है। होना चाहिये उल्टा। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़े, संसार के प्रति आकर्षण बढ़ना चाहिए। उत्साह और उमंग बढ़ना चाहिये। परन्तु समाज की व्यवस्था ही उल्टी है। ३०-३५ वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते सारा उत्साह और उमंग ठण्डा पड़ जाता है। भरी जवानी में थक जाते हैं। उत्साहहीन हो जाते हैं। जीवन बोझ और संसार असार मालूम पड़ने लगता है। फिर जीवन को जीने की मात्र औपचारिकता पूरी करते रहते हैं। किसी तरह दिन काटते रहते हैं।

जीवन को समग्रता से स्वीकार करें। वह जैसा है, उसे वैसा ही स्वीकार करें। संसार में अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों हैं। बुराइयों को छोड़कर केवल अच्छाइयों को स्वीकार कर लें, ऐसा संभव नहीं है। गुलाब चाहते हैं, तो काँटों को छोड़ नहीं सकते। काँटे भी गुलाब के साथ ही आते हैं। आप बुराइयों को न अपनाएँ, उनके विरुद्ध संघर्ष छेड़ दें। यदि बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ने की क्षमता नहीं है, तो आपको युवक कहने में मुझे हिचक होगी, हमें सोचना पड़ेगा।

संघर्ष से युवक में निखार आता है। जैसे सोना आग में निखरता है, वैसे ही। यह संघर्ष बुराइयों के पक्ष में भी हो सकता है तथा अच्छाइयों के पक्ष में भी। यदि बुराइयों के पक्ष में संघर्ष होगा, तब युवा-वर्ग व्यर्थ में अपनी ऊर्जा नष्ट करेगा, वह विकृत और कुरूप हो जाएगा। एक तरह से वह ऊर्जा आत्मघाती सिद्ध होगी। परन्तु जब वही संघर्ष सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् के लिये होगा, तब युवावस्था अत्यन्त सुंदर, स्वस्थ और नई दीप्ति से परिपूर्ण होगी। युवा-वर्ग नई आभा की दमक से युक्त होगा।

युवक को निष्कपट और सच्चा होना चाहिये। इससे मन हल्का होता है, बोझ समाप्त हो जाता है, आत्मविश्वास बढ़ता है तथा आत्मनिर्भरता बढ़ती है। युवक को चाहिये कि वह अन्याय और अत्याचार के लिए लड़े, उनका विरोध करे। युवकों को क्रान्ति के अवसर खोजने होंगे। सत्य के पक्ष में अटल होकर रहना पड़ेगा। सत्य के लिये अभी नहीं लड़ोगे, तो कब लड़ोगे। क्या वृद्धावस्था में लड़ोगे? अभी तो युवावस्था है, जो शक्ति का अजस्र-स्रोत है। उसमें से उत्साह और उमंग छलक रहा है। आयु बढ़ने पर व्यक्ति चालाक और धूर्त हो जाता है। आयु के साथ व्यक्ति का ज्ञान बढ़ने के साथ-साथ चालाकी और स्वार्थपरता बढ़ती जाती है। वह संघर्ष से बचना चाहता है, क्योंकि वह स्वार्थी हो जाता है। वह कहता है कि हमें अब दुनियादारी से क्या मलतब? अब तो हमारा समय संसार से विमुख होने का है।

अपनी कमजोरियों को छिपाने के लिये वह भ्रम-प्रमाद का सहारा लेता है।

युवा संघर्ष कर सकता है। उसमें उत्साह भी है और शक्ति भी। इसीलिये वह दुर्व्यवस्था के विरोध में संघर्ष छेड़ सकता है। आज ऐसा प्रतीत होता है, मानो हमारे देश में युवकों का अभाव हो गया है। यदि ऐसा नहीं है, तो हमारे देश में अभी भी निर्धनता, दरिद्रता और भुखमरी क्यों है? हमारे देश में इतना भ्रष्टाचार और अन्याय क्यों है? युवक होते, तो हमारे देश में इतनी दीनता, दरिद्रता और निर्धनता नहीं होती। इतनी बेइमानी कैसे सह रहे हैं हम?

अतः युवक मैं उसे कहूँगा जो खतरों से खेलने को, जूझने को तैयार हो। लीक से हटकर चलने को तैयार हो। पर ऐसे लोगों की संख्या कम है, क्योंकि खतरा मोल लेने में, लीक से हटकर चलने में, भटक जाने का, बिखर जाने की सम्भावना है। यदि नदी समुद्र में जाने से डरे, तो क्या होगा? जो भटकने से डर गया, वह पंगु हो जाता है, डरपोक हो जाता है। जीवन को आनन्द से हम तभी भर सकते हैं, जब हम खतरे मोल लेने को तत्पर हों। क्योंकि जीवन पीछे मुड़कर नहीं देखता। वह जीवन्त होता है। जीवन तो हर पल खतरों से भरा है। चूके कि गए। अतः खतरों से खेलने के लिये साहस चाहिये। युवकों को दुःस्साहसी होना पड़ेगा। नये-नये निर्णय लेने पड़ेगें। फिर सोच में पड़ जायेंगे कि कहीं निर्णय गलत न हो जाय, चुनाव गलत न हो जाय। यह भी कैसा पागलपन है! ऐसे व्यक्ति खतरे नहीं मोल सकते, चुनौतियों को स्वीकार नहीं कर सकते। जो व्यक्ति एक बार पल भर के लिए भी युवा होने का संकल्प ले लेता है, वह मृत्यु से नहीं डरता। उसकी मृत्यु ही नहीं होती। उसकी युवावस्था अक्षुण्ण हो जाती है। वह सदा युवा रहता है, चाहे उसकी आयु जितनी भी हो। युवा होने का आयु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं।

यौवन के आवेश में थोड़ी सी चेतना का, विश्वास का, संकल्प का, समावेश कर दें, तो हम कह सकते हैं कि यौवन एक अद्‌भुत घटना है, ईश्वर की अमूल्य देन है, जो युवा-पीढ़ी की अमूल्य धरोहर है। समाज भी इस युवा-वर्ग से स्वयं को गौरवान्वित समझेगा। ❑❑❑

गुरुदेव से प्रार्थना

चन्द्रमोहन

गुरुदेव तुम्हीं इस जीवन में, इक ज्योति जलाए रखते हो,
बुझते दीपक की बाती में, निज स्नेह बनाए रहते हो ।।
नवजीवन तुमसे ही पाया, इक राह नयी तुमसे पायी ।
मझधार में डूब रहे हैं हम, बस एक सहारा तुम ही हो ।।

माया में फँसता जाता था, इक आस नयी तुमसे पायी ।
सन्मार्ग दिखाया है तुमने, मंजिल से लगाते तुम ही हो ।।
चहुँ ओर भरा था अन्धकार, प्राणों में अमृत सींच दिया ।
संसार-मोह के दलदल में, रिपुओं के नाशक तुम ही हो ।।

ईश्वर को नहीं देखा हमने, तुमको उस रूप में ही पाया ।
भवसागर पार लगाने को, इक खेवनहार तुम्हीं तो हो ।।
देकर निज कृपादृष्टि तुम ही, मेरा अज्ञान हरण करते ।
भवरोग निवारो गुरु मेरे, मानस के वैद्य तुम्हीं तो हो ।।

पद-पंकज में मन लग जाए, ईश्वर का दर्शन मिल जाए ।
नैनों में अंजन वो भर दो, चक्षु उन्मीलक तुम ही हो ।।
चिर अभय शान्ति तुम दे करके, चंचल मन को शीतल करते ।
उन्मुक्त द्वार अब हो जाये, करुणा आधार तुम्हीं तो हो ।।

चरणों में तुम्हारे आश्रय पा, सबमें है ईश्वर दिख जाता ।
भव-बन्धन भी कट जाते हैं, पैनी असिधार तुम्हीं तो हो ।।
मम जीवन बगिया खिल जाये, भवसिंधु किनारा मिल जाए ।
मेरे जीवन के उद्धारक, मेरे सर्वस्व तुम्हीं तो हो ।।

श्रीराम तुम्हीं, श्रीकृष्ण तुम्हीं, तुम ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर हो ।
साकार तुम्हीं हो निराकार, अग जग व्यापी परमेश्वर हो ।।
तुम दिव्य दृष्टि देने वाले, तुम मेरे भाग्य विधाता हो ।
हे मेरे जीवन के स्वामी, तुम ही चिन्मय सुखदाता हो ।।

❑❑❑

स्वामी प्रकाशानन्द (२)

स्वामी अब्जजानन्द

(स्वामी विवेकानन्द के अल्पावधि जीवन-काल में अनेक नर-नारी उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आये। कुछ युवकों ने उन्हीं के चरणचिह्नों पर चलते हुए त्याग-संन्यास का जीवन भी अंगीकार किया था। प्रस्तुत है स्वामीजी के उन्हीं संन्यासी शिष्यों में से कुछ की जीवन-गाथा। इसे बँगला ग्रन्थ 'स्वामीजीर पदप्रान्ते' से लिया गया है। हिन्दी अनुवाद में कहीं-कहीं अंग्रेजी संस्करण से भी सहायता ली गयी है। – सं.)

इसके बाद परिव्राजक प्रकाशानन्द ने ऋषीकेश तथा हरिद्वार में ठहरकर तपस्या में मन लगाया। इन दिनों हरिद्वार के पास कनखल में स्वामीजी के एक अन्य शिष्य कल्याणानन्द की साधना तथा कठोर परिश्रम के फलस्वरूप एक सेवाश्रम की स्थापना हुई थी। प्रकाशानन्द ने कुछ दिन कनखल में रहकर साधन-भजन तथा गुरुभाई कल्याणानन्द के कार्य में भी विविध प्रकार से सहायता की थी। संयोगवश विरजानन्द के भी कुछ दिनों के लिये कनखल आ जाने पर गुरुभाइयों के आनन्द की सीमा न रही। हिमालय का ध्यानमय परिवेश, अन्तरंग लोगों का सान्निध्य तथा स्वाध्याय-आत्मचर्चा आदि के फलस्वरूप शान्त-स्वभाव प्रकाशानन्द की मानसिक अन्तर्मुखता में कितनी वृद्धि हुई थी, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। वे सुयोग के अनुसार अमरनाथ तथा और भी कई प्रसिद्ध तीर्थों का दर्शन कर आये थे। अब से हिमालय मानो उनके मन-प्राण में रच-बस गया – लगता था कि अब विराट् के आकर्षण से दूर जा पाना उनके लिये सम्भव नहीं हो सकेगा। इसीलिये अब उनके भावानुरूप कर्मक्षेत्र के रूप में भी मायावती का निर्धारण हुआ।

१९०२ ई. के उत्तरार्ध में वे कर्मी के रूप में मायावती के अद्वैत आश्रम में भेजे गये। इसी काल से १९०६ ई. के प्रारम्भ अर्थात् विदेश-गमन के पूर्व तक तुषारमौलि हिमालय ही प्रकाशानन्द का प्रिय आवास हुआ। अद्वैत आश्रम से प्रकाशित होनेवाली अंग्रेजी पत्रिका 'प्रबुद्ध भारत' के सम्पादन में भी उनकी सहायता पत्रिका के इतिहास में स्मरणीय है। इसके अतिरिक्त मायावती आश्रम के परिचालन में भी वे एक कुशल सहकारी थे। स्वामीजी के प्रिय शिष्य स्वरूपानन्द उन दिनों उस आश्रम के अध्यक्ष थे।

१९०६ ई. के अप्रैल में प्रकाशानन्द को अमेरिका के सैन्फ्रांसिस्को वेदान्त-समिति के लिये प्रचारक के रूप में चुना गया। विदेश-यात्रा के पूर्व श्रीमाँ से प्रार्थना करने पर उन्होंने प्रकाशानन्द को पूरे हृदय से आशीर्वाद दिया था। पश्चिम के नवीन परिवेश के विषय में संशयालु सन्तान को माँ ने उस दिन एक अपूर्व आलोक प्रदान किया था। प्रकाशानन्द को अन्तिम उपदेश देते हुए माँ ने कहा था, "बेटा, याद रखना – जब जैसा, तब तैसा; जहाँ जैसा, वहाँ वैसा।" प्रकाशानन्द ने भी माँ के इस आदेश को जीवन भर के लिये शिरोधार्य कर लिया था। अस्तु।

आगामी अगस्त से सैन्फ्रांसिस्को हिन्दू-मन्दिर के संस्थापक तथा अध्यक्ष स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी प्रकाशानन्द के समान सुयोग्य सहकारी को पाकर बड़े ही आनन्दित हुए थे। इसी समय से १९१४ ई. तक के दीर्घ आठ वर्ष के दौरान उन्होंने त्रिगुणातीत स्वामी के बहुविध कार्यों में सहायता करते हुए अद्भुत कुशलता का परिचय दिया था। उपयुक्त सहकारी होने के कारण नये-नये उद्यमों की भी सृष्टि होती रही। वेदान्त-अध्यापन तथा ध्यान-धारणा आदि की शिक्षा के लिये आश्रमों की स्थापना तथा विभिन्न स्थानों में वेदान्त-प्रचार के अलावा, उन दिनों त्रिगुणातीतानन्द जी के सम्पादन तथा प्रकाशानन्द के सहयोग से Voice of Freedom (मुक्ति की आवाज) नामक एक मासिक पत्रिका भी सैन्फ्रांसिस्को से प्रकाशित हो रही थी। १९०७ ई. के अप्रैल में कैलीफोर्निया के राजकीय विश्वविद्यालय (State University of California) ने भारत के इन दो अकिंचन संन्यासियों को जिस प्रकार सम्मानित किया, उससे यह समझ में आ जाता है कि उस काल के अमेरिका में भी इन दोनों वेदान्तनिष्ठ संन्यासियों की कार्य-प्रणाली कितनी आदरणीय हो गयी थी। यह भी ज्ञात होता है कि उक्त विश्वविद्यालय ने अमेरिका के राष्ट्रपति थियोडोर रुजवेल्ट के अतिरिक्त अन्य किसी भी अतिथि के प्रति वैसा सम्मान प्रदर्शित नहीं किया था – किसी विदेशी को तो बिल्कुल ही नहीं। उक्त विश्वविद्यालय के कुलपति बेंजामिन ह्वीलर ने स्वामी त्रिगुणातीतानन्द तथा प्रकाशानन्द का स्वागत करते हुए कहा था, "We are just beginning to acknowledge the gratitude we owe to the East and to appreciate the hitherto underestimated influence of India on Western Civilization." – अर्थात् "हम लोग प्राच्य सभ्यता के जितने ऋणी हैं और पाश्चात्य सभ्यता पर भारत के प्रभाव को अब तक जैसा कम करके आँका गया है, उसे कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करना अभी हमने प्रारम्भ मात्र किया है।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि पाश्चात्य देशों में भारतीय धर्म-प्रचार के इतिहास में यह घटना विशेष उल्लेखनीय है।

१९१४ ई. के उत्तरार्ध में प्रकाशानन्द ने ओरेगान तथा वाशिंग्टन राज्य के विभिन्न स्थानों का दौरा करते हुए प्रबल धर्मान्दोलन आरम्भ किया था। उसी वर्ष उनके उद्यम से

सैन्फ्रांसिस्को में 'पैसिफिक वेदान्त केन्द्र' (Pacific Vedanta Centre) नाम से एक नयी संस्था भी स्थापित हुई। १० जनवरी १९१५ को एक मार्मिक दुर्घटना में सहसा स्वामी त्रिगुणातीतानन्द का देहान्त हो जाने पर, स्वाभाविक रूप से ही सैन्फ्रांसिस्को वेदान्त समिति का उत्तरदायित्व प्रकाशानन्द के कन्धों पर ही आ पड़ा। वैसे अपने अनेकविध कर्मक्षेत्र को समेटकर, मूल केन्द्र का नेतृत्व ग्रहण करने में उन्हें व्यावहारिक रूप से लगभग एक वर्ष और लग गया था। १९१६ ई. के प्रारम्भ से ही उन्होंने समिति के अध्यक्ष का कार्यभार लेकर अगले मार्च से 'Voice of Freedom' (मुक्ति की आवाज) पत्रिका का प्रकाशन बन्द कर दिया तथा अन्य कई विभागों का कार्य संक्षिप्त करके जिज्ञासुओं में वेदान्त के उच्च तत्त्वों के प्रचार तथा ध्यान-धारणा आदि में अधिक मनोयोग किया। विभिन्न प्रकार से खर्चों में कमी करके, अत्यन्त धैर्य-तितिक्षा तथा बुद्धिमत्ता के साथ सैन्फ्रांसिस्को के हिन्दू-मन्दिर के निर्माणार्थ पहले से लिये हुए एक लाख रुपयों से भी अधिक के ऋण का शीघ्र ही शोधन करने में समर्थ हुए। उनके संचालन में हिन्दू-मन्दिर तथा वेदान्त-समिति की सफलता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई थी। विशेषकर उनके आकर्षक व्यक्तित्व, सरल आध्यात्मिक जीवन, मधुर विनम्र आचरण तथा शास्त्रों में गहन पैठ ने सबको आकृष्ट कर लिया था। उन्होंने कैलीफोर्निया के विभिन्न नगरों का दौरा करते हुए, समाज के सभी स्तरों के लोगों के साथ आत्मीयता स्थापित करके वेदान्त-प्रचार किया था। अमेरिकावासी उत्तरोत्तर उनके गुणों पर मुग्ध होने लगे और सनातन भारतीय आदर्श के प्रति अधिकाधिक आकृष्ट होते रहे। १९१५ ई. में पनामा प्रदर्शनी द्वारा आयोजित धर्म तथा दर्शन की महासभा से आमंत्रण पाकर प्रकाशानन्द ने उसमें जो व्याख्यान दिये थे, उससे लोगों के मन में विशेष उत्साह की सृष्टि हुई। वहाँ उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन के उपाध्यक्ष के रूप में भी सारगर्भित व्याख्यान प्रदान किया था।

सैन्फ्रांसिस्को से थोड़ी दूरी पर स्थित सैन एन्टानियो की घाटी में स्वामी तुरीयानन्द द्वारा स्थापित 'शान्ति आश्रम' भी हिन्दू-मन्दिर द्वारा ही संचालित होता था। कैलीफोर्निया के पर्वतीय अंचल के वनों में स्थित यह निर्जन साधना-कुटीर सचमुच ही मन को शीतल करनेवाला एक शान्ति-निलय था। हिन्दू मन्दिर के साधक प्रतिवर्ष ग्रीष्मावकाश या अन्य किसी भी अवसर पर प्रकाशानन्द के नेतृत्व में वहाँ जाते और ध्यान-धारणा, शास्त्रपाठ तथा तपस्या आदि में अपना समय बिताते। तुरीयानन्द जी की तपस्या से धन्य हुआ यह आश्रम सचमुच ही मानो हिमालय का कोई तपोभूमि था। यहाँ के जिज्ञासु साधक साल का कुछ काल प्रकाशानन्द के निर्देशन में कठोर नियम-निष्ठापूर्वक तपस्या करने में बिताते। इस दौरान उन्हें ऐसा बोध होता मानो वे भारतवर्ष के किसी ऋषि के आश्रम के पुनीत परिवेश में रहकर साधन-भजन तथा वेदान्त आदि पर चर्चा कर रहे हैं। जंगल से स्वयं ही लकड़ियाँ लाकर, रात में नक्षत्रखचित खुले आकाश के नीचे धूनी जलायी जाती; और उसके चारों ओर बैठकर ध्यान, पाठ तथा चर्चा का दौर चलता। ब्राह्म-मुहूर्त में शय्यात्याग के समय से प्रारम्भ करके जप-ध्यान, वेदान्त-चर्चा, भगवत्-प्रसंग तथा भजन-आवृत्ति आदि चलते रहते; और आश्रम के सारे कार्य, स्नान, भोजन पकाना, आहार, विश्राम, शयन आदि सब कुछ यहाँ भारतीय आश्रमों की रीति से अति सहज-सुन्दर नियमानुसार सम्पन्न होता। शान्ति आश्रम की शान्त पृष्ठभूमि में, इसके अन्तेवासियों से घिरे वेदान्ती संन्यासी प्रकाशानन्द का जीवन मानो और भी माधुर्यमय हो उठता।

दिन-रात अथक परिश्रम के फलस्वरूप प्रकाशानन्द का शरीर क्लान्त व दुर्बल होने लगा। अस्तु। बिगड़े हुए स्वास्थ्य के बावजूद प्रकाशानन्द अपने गुरुदेव द्वारा निर्दिष्ट कर्म करते हुए अपने प्राणों की आहुति देने को कृतसंकल्प थे।

१९२२ ई. के अन्त में अपने शुभाकांक्षी मित्रों के अनुरोध पर वे कुछ दिन विश्राम करने हेतु भारत आये। कुछ पाश्चात्य भक्त तथा ब्रह्मचारी गुरुदास (बाद में स्वामी अतुलानन्द) भी उनकी भारतयात्रा के संगी हुए। दीर्घ काल के बाद मठ में लौटकर अपने अन्तरंग प्रियजनों से मिलकर उनका मन अत्यन्त प्रफुल्ल हो उठा। इसके फलस्वरूप उनके स्वास्थ्य में किंचित् सुधार भी हुआ था; परन्तु निरन्तर बन्धु-बान्धवों, भक्तों, जिज्ञासुओं तथा देश की जनता के साथ मिलने-जुलने, बातचीत करने तथा सभा-समितियों में व्याख्यान आदि देने से उन्हें पुन: क्लान्ति का बोध होने लगा। पश्चिम में धर्मप्रचार में उनकी सफलता हेतु कलकत्ता-वासियों ने उनका भव्य रूप से अभिनन्दन किया। इस उपलक्ष्य में उनके सम्मान हेतु कलकत्ते में एक विशाल जनसभा का आयोजन किया गया, जिसमें उन्हें संस्कृत-बँगला तथा अंग्रेजी में अनेक स्वागत-सन्देश तथा अभिनन्दन-पत्र अर्पित किये गये। स्वागत भाषण के उत्तर में उन्होंने भी एक अतीव मनोरम व्याख्यान दिया। इस प्रकार कलकत्ते में भी वे व्याख्यान तथा धर्मचर्चा आदि में व्यस्त हो गये। स्वास्थ्य-सुधार हेतु आवश्यक विश्राम लेना उनके लिये सम्भव नहीं हो सका। उनके स्वभाव का यह एक वैशिष्ट्य था कि वे किसी के अनुरोध को टाल नहीं सकते थे, इस कारण उन्हें समागत लोगों के साथ निरन्तर बोलते रहना पड़ता था। अस्तु। १९२३ ई. के अप्रैल में वे पुन: विदेश-यात्रा पर चल पड़े। इस बार मठ के दो संन्यासी कर्मी भी उनके साथ गये। संगी संन्यासियों में से एक उनके सहकारी के रूप में सैन्फ्रांसिस्को में रहनेवाले थे और दूसरे न्यूयार्क की वेदान्त-समिति के लिये मठ से भेजे गये थे।

प्रकाशानन्द के सैन्फ्रांसिस्को लौटने पर वेदान्त-अनुरागी भक्तगण बड़े ही आनन्दित थे। विशेषकर, इस बार उनके साथ एक सहकारी संन्यासी भी साथ होने के कारण उन्हें थोड़ा विश्राम मिल सकेगा, यह सोचकर हिन्दू मन्दिर के साधकगण बड़े निश्चिन्त हुए। परन्तु व्यावहारिक रूप से उन लोगों की यह आशा निरर्थक सिद्ध हुई थी। योग्य सहकारी को पाकर प्रकाशानन्द के चित्त का उत्साह दुगना हो गया था – स्वामीजी के भाव-प्रचार की प्रेरणा ने उन्हें और भी व्याकुल कर डाला था। कभी विश्राम की बात कहने पर वे तत्काल हँसते हुए उत्तर देते – "When my work is finished, I will rest. Now I must be up and doing to spread Swamiji's message all over California." ("कार्य समाप्त होने पर ही मैं विश्राम लूँगा। इस समय समस्त कैलीफोर्निया में स्वामीजी के सन्देश का प्रचार ही मेरा जीवन-व्रत है।") वे अपने सहकारी को नये-नये केन्दों की स्थापना करके वेदान्त-प्रचार करने की प्रेरणा देते और धर्मप्रचार हेतु उन्हें राज्य के विभिन्न अंचलों में भेजते रहते। इस प्रकार प्रकाशानन्द की प्रेरणा से ही १९२५ ई. के अक्तूबर में पोर्टलैंड के वेदान्त-समिति का आविर्भाव हुआ। अगले नवम्बर में उन्होंने स्वयं भी पोर्टलैंड जाकर वहाँ की समिति के उद्घाटन समारोह का संचालन किया था। समिति की क्रमश: उन्नति होते देखकर बाद में उन्हें परम आनन्द का अनुभव हुआ था ! वे परम तृप्ति-भाव के साथ कहते, "We are gaining ground. Swami Vivekananda is blessing the work." ("हमारा कार्य सुदृढ़ हो रहा है। स्वामी विवेकानन्द इस पर आशीर्वादों की वर्षा कर रहे हैं।")

प्रबल कर्मठता के बावजूद, प्रकाशानन्द के ध्यान-भजन तथा शास्त्रचर्चा आदि में विराम नहीं आता था। बीच-बीच में वे कुछ चुने हुए साधकों को साथ लेकर तपस्या आदि में समय बिताने के लिये शान्ति आश्रम चले जाते। वहाँ पर वे नित्य नियमित रूप से जप-ध्यान और 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत', स्वामीजी की ग्रन्थावली, भागवत, गीता तथा उपनिषद् आदि ग्रन्थों का पाठ तथा चर्चा करते। भजन-कीर्तन भी उन लोगों की तपस्या के अंग थे। उनके सान्निध्य में उनके निर्देशानुसार अन्य साधकगण भी अपने-अपने आध्यात्मिक जीवन के गठन के प्रयास में लगे रहते।

कठोर परिश्रम के फलस्वरूप प्रकाशानन्द का स्वास्थ्य क्रमश: बिगड़ता जा रहा था। मधुमेह रोग ने उन पर बड़ी उग्रता के साथ आक्रमण किया। उनका शरीर दिन-पर-दिन दुर्बल होता रहा, तथापि कभी एक क्षण के लिये भी उनके चेहरे पर मलिनता नहीं दिखाई दी। अपने महाप्रयाण का दिन अति निकट जानकर भी वे सभी प्रकार से स्वयं को स्वामीजी के हाथों का यंत्र अनुभव करते हुए उन्हीं के द्वारा आदिष्ट कर्म तथा ध्यान में पूरी तौर से निमग्न थे। आखिरकार १९२७ ई. के १३ फरवरी, रविवार के दिन शाम को साढ़े पाँच बजे स्वामी प्रकाशानन्द ने अति धीर तथा प्रसन्न भाव के साथ श्रीगुरु के चरण-कमलों में चिर-विश्राम प्राप्त किया। महासमाधि के समय उनकी आयु ५३ वर्ष थी।

एक बार उन्होंने सैन्फ्रांसिस्को से अपने गुरुभाई स्वामी विरजानन्द को एक व्यक्तिगत पत्र में लिखा था – "I feel that I still have a message to give to the world." ("मुझे अनुभव हो रहा है कि मुझे अब भी विश्व को एक सन्देश देना है।") वेदान्त के महान् सन्देश को सारे विश्व में प्रसारित करना ही स्वामी प्रकाशानन्द की आमृत्यु साधना थी। जिन युगाचार्य स्वामीजी के दैवी आदेश तथा वैद्युतिक प्रेरणा से उन्होंने परम श्रद्धा के साथ जीवन के अन्तिम क्षण तक यह उत्तरदायित्व अपने सिर पर वहन किया था, मानो उन्होंने ही कार्य की समाप्ति पर अपने तपो-क्लान्त शिष्य को अपने धाम में बुला लिया। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के एक वरिष्ठ सन्देशवाहक ने इसी प्रकार भगवत्-चरणों में अपनी आहुति दे दी। उनके देहान्त के बाद रामकृष्ण संघ के अंग्रेजी मुखपत्र 'प्रबुद्ध भारत' (अप्रैल १९२७) में उनके विषय में जो सश्रद्ध वक्तव्य छपा था, वही उनके प्रति एक उचित श्रद्धांजलि है – "May rest and eternal peace be the reward of him who on earth worked untiringly, unselfishly; who served God and man as his Master would have it. We are reminded of Swami Vivekananda's words, 'Our salutation goes to all those God-like men who worked to help humanity.' " ("हमारी प्रार्थना है कि उन्हें विश्राम तथा चिर-शान्ति प्राप्त हो, जिन्होंने अथक तथा नि:स्वार्थ भाव से ईश्वर तथा मनुष्य की उसी निष्ठा के साथ सेवा की जैसा कि उनके गुरुदेव चाहते थे। इस अवसर पर हमें स्वामी विवेकानन्द के इन शब्दों का स्मरण हो आता है, 'हम उन सभी ईश्वर-तुल्य लोगों का अभिवादन करते हैं, जो मानवता की सहायता के लिये कार्य करते रहे।')

❑❑❑

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर

२४८. आपत काल में धैर्य से काम लेना चाहिये

जापान के राजा का सेनापति नेबुनागा कुशल योद्धा तो था ही, विषम परिस्थितयों में वे अचूक निर्णय लेने में भी विवेक और दूरदर्शिता का परिचय देता था। एक बार उसे गुप्तचरों से सूचना मिली की एक राजा दल-बल सहित उसके राज्य पर आक्रमण करने के लिए निकल पड़ा है। वह चिन्ता में पड़ गये। उस समय राजा भी अपनी प्रमुख सेना लेकर एक अन्य राजा को खदेड़ने के लिए गया हुआ था। इस तरह किले में शस्त्रास्त्र और सैनिक कम थे। सूर्यास्त का समय था। ऐसी कठिन स्थिति में उसके मन में बार-बार यह प्रश्न कौंध रहा था कि शत्रु की विशाल सेना को देख क्या हमारे सैनिक निरुत्साहित नहीं होंगे! उसने इस पर काफी विचार किया और उसे एक युक्ति सूझी। वह सैनिकों को लेकर मन्दिर में गया। देवता को प्रणाम करके उसने सैनिकों से कहा, ''वर्तमान परिस्थिति में भगवान पर भरोसा करना ही हमें जीत दिला सकता है। लेकिन इसके लिए हमें उसकी राय जाननी भी जरूरी है।'' उसने एक सिक्का निकाल कर कहा, ''बताओ, सिक्के के चित्त पड़ने पर हमारी विजय होगी या पट पड़ने पर?'' सबके ''चित्त'' कहने पर उसने सिक्के को तीन बार ऊपर उछाला। सिक्के को तीनों बार चित्त पड़ा देख सैनिक हर्ष से चिल्ला उठे, ''देवता ने हमें जीत का सन्देश दिया है, इसलिए जीत हमारी ही होगी। हम शत्रु-सेना का डटकर मुकाबला करेंगे।'' सैनिकों ने युद्ध में शौर्य-पराक्रम दिखाया। परिणामत: शत्रु को मुँह की खानी पड़ी और उसे हारकर वापस लौटना पड़ा।

जीत की खुशी में मन्दिर में विजय समारोह का आयोजन किया गया। सेनापति ने अपने भाषण में सैनिकों के अतुल्य पराक्रम की तारीफ की। वह बोला, ''आप लोग सोचते होंगे कि देवता का समर्थन मिलना ही हमारी जीत का कारण है, तो यह अर्धसत्य है।'' उसने अपनी जेब से सिक्का निकालकर कहा, ''सच तो यह है कि जिस सिक्के को मैंने उछाला था, वह यह है और इसके दोनों ओर चित्त की ही छाप है। दोस्तो, तीनों बार सिक्के द्वारा चित्त दिखाने से आप सबका मनोबल ऊँचा उठा और आपने दूने उत्साह से युद्ध में पराक्रम दिखाकर शत्रु सेना को वापस लौटने को मजबूर किया।''

विपत्ति के क्षणों में जो धैर्य, साहस सहिष्णुता, उत्साह और विवेकशीलता का परिचय देता है, उसका मनोबल बढ़ता है तथा हृदय में आशा का संचार होता है। तब वह स्वयं को कभी भी असहाय, अशक्त और असमर्थ महसूस नहीं करता। फलत: आत्मबल और पौरूष उसके विजय का मार्ग प्रशस्त कर देता है।

२४९. श्रद्धापूर्वक किया कर्म ही हो जाता है श्राद्ध

एक बार जब राजा करन्धम (कालभीत) ने महाकाल से प्रश्न किया, ''श्राद्धपक्ष में जब हम पितरों को जल देते हैं, तो वह नदी के जल में मिल जाता है। भूलोक में रखा अन्न का पिण्ड और जल स्वर्ग में रहने वाले पितरों तक कैसे पहुँच जाता है और उन्हें तृप्ति भी कैसे होती है?''

महाकाल ने उत्तर दिया, ''राजन्, श्राद्ध और तर्पण शास्त्रों का विधान है। इन्हें करने के पीछे जो भावना निहित है, वह है श्रद्धा। यदि श्रद्धापूर्वक मंत्रोच्चारण के साथ श्राद्ध-तर्पण किया जाए, तो वह पितरों तक अवश्य पहुँचेगा। शास्त्रों में कहा गया है – **श्रद्धया क्रियते यस्मात् श्राद्धं तेन प्रकीर्तितम्** (इसे श्रद्धापूर्वक किया जाता है, इसीलिये इसे श्राद्ध कहते हैं)। तर्पण करते समय कामना की जाती है – **तृप्तिम् अखिला-यातुम्-अददने श्रद्धया न अम्बुना सदा**। इसका आशय यह है कि श्रद्धा से दिया जाने वाला जल पितरों तक पहुँचे। व्यवहार की बात करें, तो जब हम भूखे या प्यासे को देखते हैं, तो हमारे मन में तत्काल उसके लिए भोजन व जल की व्यवस्था करने के विचार उठते हैं। इसी प्रकार गरमी से व्याकुल व्यक्ति को देख हम पंखे से हवा पहुँचाने की सोचते हैं और इन कार्यों को करने में हम जुट भी जाते हैं। इससे उन्हें जो तृप्ति मिलती है, वह शारीरिक तृप्ति होती है। दूसरी ओर किसी व्यक्ति को शोकाकुल देख हम सहानभूति के दो शब्द बोलकर उसमें उत्साह भरने की प्रयत्न करते हैं, तब उन्हें होने वाली वह तृप्ति मानसिक होती है। हमारे द्वारा किये गये श्राद्ध व तर्पण से उन्हें दोनों प्रकार की तृप्ति मिलती है। इस लोक में हम पितरों को जो भी देते हैं, दैवी शक्तियाँ उन्हें भोग-भाग्य बनाकर उस लोक में पहुँचाने का काम करती हैं। इससे उन्हें तृप्ति या सन्तुष्टि के अलावा शान्ति भी मिलती है।'' उन्होंने आगे कहा, ''राजन्, यह तो श्राद्ध और तर्पण की बात हुई। दान, होम-हवन, तप, तीर्थ, व्रत आदि शास्त्र-विहित कर्मों को करते समय भी हमारे मन में श्रद्धा व विश्वास का होना अत्यन्त आवश्यक है।'' ❖ **(क्रमश:)** ❖

कर्मयोग – एक चिन्तन (२०)

स्वामी सत्यरूपानन्द

(प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मिशन आश्रम, राजकोट, गुजरात में दिया था। इसका टेप से अनुलिखन पूना की सीमा माने और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है।)

पिछली बार हमने देखा – भगवान ने अर्जुन से कहा –

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम्।। ३-२५

– हे अर्जुन संसार में आसक्त व्यक्ति, कर्म में, कर्म के फलों में आसक्त व्यक्ति, जिस प्रकार कर्म करता है, उसी प्रकार विद्वान को अनासक्त होकर जनकल्याण की भावना से कर्म करना चाहिये। किस उद्देश्य से कार्य करना चाहिये? लोकसंग्रहम् – जन कल्याण की भावना से कर्म करना चाहिये।

आइये, इस पर थोड़ा विचार करें। यहाँ अविद्वान का अर्थ अपठित, बिना पढ़ा-लिखा व्यक्ति से नहीं है। जिसके पास पी.एच.डी. की डिग्री नहीं है, जो अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी पढ़ा नहीं है, इसका तात्पर्य उससे भी नहीं है।

भगवान आचार्य शंकर अपने भाष्य में विद्वान का अर्थ आत्मज्ञानी कहते हैं। स्वआत्मनुभव अविद्वांस:? – जिसको आत्मज्ञान नहीं हुआ है, जिसको संसार अच्छा लगता है, जिसको संसार के कर्तव्यों में रूचि है, ऐसे व्यक्ति को भगवान कहते हैं अविद्वान। ये अज्ञानी जन जिस प्रकार कर्म करते हैं, उसी प्रकार आत्मज्ञानी को भी उत्साहपूर्वक अनासक्त होकर लोकहितैषी कर्म करने चाहिये।

जिसने तत्त्व को समझ लिया है कि मैं शरीर नहीं हूँ और संसार के कर्मों के फल पर मेरा कोई अधिकार नहीं है, केवल प्रारब्ध के प्रवाह से कर्तव्यबुद्धि से मैं यह कर्म कर रहा हूँ, मुझे इससे कोई लेना-देना नहीं है – ऐसा जो विद्वान व्यक्ति है, उनको लोक-कल्याण की भावना से कर्म करना चाहिये।

विद्वान - तत्त्वज्ञानी लोकल्याण के लक्ष्य से कार्य करे। कोई भी व्यक्ति बिना किसी लक्ष्य के कभी कोई कर्म नहीं करता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। पाश्चात्य दार्शनिकों का यह एक आक्षेप है कि गीता का जीवन दर्शन अव्यवहारिक है, क्योंकि वह फल त्यागने को कहती है। मनुष्य के मन की ऐसी संरचना ही है कि वह बिना लक्ष्य के, बिना कारण के कोई भी काम नहीं करेगा। जो पागल होगा वही करेगा। थोड़ी-सी जिसे बुद्धि होगी, वह तुरन्त पूछेगा कि क्यों ऐसा करें? क्या काम है? यदि कोई कहे, चलो बाजार जायें, तो वह तुरन्त पूछेगा – क्यों बाजार जायें? घूमने जाना है, सुनकर वह जाता है। तो बिना लक्ष्य के मनुष्य का मन कभी-भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है।

अब जो विद्वान है, जिसने आत्मोपलब्धि कर ली है, कि मैं देहातीत शाश्वत आत्मा हूँ, जो पूर्ण तृप्त है, वह क्यों कर्म करेगा? उसे भी भगवान कहते हैं कि तुम्हें भी लोक-कल्याण की भावना से कर्म करना चाहिये। जैसे अंधेरे के साथ उजाला और उजाले के साथ अंधेरा रहता है, यही प्रवृत्ति हमारे मन की भी है। हमें लोकसंग्रह का कार्य भी बिना किसी प्रतिदान की इच्छा से करना चाहिये। कुछ लोग कहते हैं कि मैंने हॉल बनवाने में इतना दान दिया, आपकी इतनी सेवा की, इतना बड़ा कल्याण किया, तो मुझे कोई पैसा और पद नहीं चाहिये, किन्तु आप मेरे पिताजी के नाम का एक पत्थर यहाँ लगवा दीजिये। इससे कुछ लोगों की सेवा तो हो जायेगी, इतने लोगों के कार्यक्रम के लिये रामकृष्ण मठ को यह हॉल मिल जायेगा, किन्तु इससे मेरा कल्याण नहीं होगा। मान लीजिये किसी ने आपके पिताजी का नाम पत्थर पर लिखकर लगा भी दिया और वे कब दिवंगत हो गये, किसी को मालूम ही नहीं चला। मैं खुद जब दिवंगत हो जाऊँगा, किसी को मालूम नहीं होगा। एक ऐसा समय आयेगा कि यहाँ एक पंखा लगाना है, कहीं जगह नहीं दीख रही है, तो कोई कहेगा कि इसी दीवार के ऊपर का पत्थर उखाड़कर फेंक दो और यहाँ पंखा बिठा दो। यह नाम-यश का प्रतिदान हमारा कल्याण नहीं कर पायेगा। इतनी छोटी-छोटी बातें हमारे जीवन को नष्ट कर देती हैं। हमें इस पर ध्यान देना चाहिये।

इसलिये भगवान क्या कहते हैं – लोक संग्रह चिकिर्षु – लोक-कल्याण से कर्म करो, किन्तु प्रतिदान मत माँगो। लोक- कल्याण तुम्हारे कल्याण के लिये है। तुमको प्रभुकृपा से ज्ञान मिला है, आनन्द मिला है, तो तुम ऐसी इच्छा करो कि दूसरों को भी सुख मिले। लोक संग्रह का तात्पर्य है – जगत कल्याण। राजनीतिक लोग जिसको सोसल वेलफेयर कहते हैं, वह आध्यात्मिक लोक संग्रह नहीं है।

लोकसंग्रह का सही तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति जो सही कर्म कर रहा है, उसे उस विश्वास से सही कर्म करने की सुविधा मिले। तुम विद्यार्थी हो तो पढ़ो। तुम एम.ए., पी.एच.डी. नहीं करना चाहते, तो मत करो। तुमको वेल्डिंग में रूचि है, तो वही सिखो, यह भी विद्या है। उस व्यक्ति के जीवन के विकास के लिये वही उचित है। जिसके जीवन के विकास के लिये जो साधन उचित हो, उसे प्राप्त कराना लोकसेवा होगी।

भगवान कहते हैं कि विद्वान ज्ञानवान को दूसरों की बुद्धि में भेद उत्पन्न नहीं करना चाहिये। उससे महान अहित होता है। आजकल बहुत से प्रचारक गुरु अनाधिकारियों को संन्यास दे देते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि भगवान बुद्ध ने

संन्यास की छूट दे दी। वैसे बुद्ध स्वयं नहीं चाहते थे, किन्तु आनन्द जो उनके शिष्य और भाई थे, उन्होंने कहा कि स्त्रियों को भी संन्यास देना चाहिये। भगवान बुद्ध ने उनकी बात मानकर अनुमति दे दी। हम देखते हैं कि आज से दो हजार साल पहले बड़ी संख्या में भिक्षु और भिक्षुणी हुये थे। उनमें से कई इसके अधिकारी नहीं थे, तो क्या वह लोकसंग्रह हुआ? इससे तो लोक अहित हो गया और उसका परिणाम – आज बुद्ध धर्म भारत से चला गया। संन्यास के सभी अधिकारी नहीं हैं। आप ये मत समझिये कि हमने गेरुवा पहन लिया है, तो हम बहुत आदर्श संन्यासी हैं। रंग से कोई संन्यासी नहीं होता। रंग तो दो पैसे का होता है। हम मन को शुभ, सेवा के विचारों से रंग लें, यह मुख्य बात है। लोगों को प्रेरणा मिलनी चाहिये। लगना चाहिये कि देखो ये सज्जन सब अपने घर का काम करते हैं, नौकर लगाने की क्षमता है, पर खुद बगीचे में पानी डालते हैं, खुद सब काम स्वयं करते हैं, तो दूसरों को प्रेरणा मिली कि भाई अपना काम स्वयं ही करना चाहिये। दूसरी प्रेरणा मिली कि ये सज्जन किसी की कड़वी बात सुनकर भी प्रतिवाद नहीं करते हैं, तो इस तरह अपने व्यवहार से भी आप बहुत बड़ा लोक-संग्रह कर रहे हैं।

आइए, अब व्यक्तिगत जीवन में इस लोकसंग्रह की चर्चा करें। यह भी साधना की दृष्टि से है। लोकसंग्रह एक सामाजिक व्यवहार, व्यवस्था है। आप हम सभी समाज में रहते हैं। आप गृहस्थ हैं, आपका परिवार है। क्या आप अपने घर में लोकसंग्रह का अभ्यास करते हैं? एक बार आत्मनिरीक्षण करके आप देखें। अंग्रेजी में कहावत है – Charity begins at home.

सामाजिक समरसता के अभाव में समाज परिवार बिखर रहा है। पारिवारिक समरसता के अभाव में कितने परिवार बिखर गये हैं, टूट गये हैं। ऐसे कुछ बच्चों को हम जानते हैं कि युवा हैं, किशोर हैं, १६-१७ वर्ष की उम्र है, वे कहते हैं कि महाराज क्या बतायें, सुबह होते ही माँ–बाप हमारे इतने लड़ते हैं कि हम कुछ बोल नहीं सकते। हमारा पढ़ने में मन नहीं लगता। स्कूल जाने में देर हो जाती है। माँ टिफिन देना भूल जाती है। आप थोड़ा सोचें, क्या आप यह लोकसंग्रह कर रहे हैं? किसी रक्तदानकर्ता में अपना बहुत बड़ा नाम देकर रखा है – Blood Donors और लिखा रहा है कि यदि किसी दिन कोई बीमार हो और उसे रक्त की आवश्यकता हो, तो आप मुझे फोन करके बुलाइये, मैं रक्त दान करूँगा। दूसरे का जीवन अपने रक्त से बचाना यह भी अच्छी बात है। लेकिन थोड़ा-सा इस दृष्टि से भी विचार करें कि आपके घर में आपके लड़ाई-झगड़े से आपके पुत्र का जीवन नष्ट हो रहा है, क्या आप उसे बचाने का प्रयास कर रहे हैं? जब तक आप घर में लोकसंग्रह का अभ्यास नहीं करते, तब तक बाहरी लोकसंग्रह आपके परिवार एवं जीवन में शान्ति नहीं ला सकता। आप अपने बच्चे को आदर्श शिक्षण देना चाहते हैं। आप चाहते हैं कि आपका बच्चा सुबह ५ से ५.३० बजे उठे। लेकिन आप उठते हैं सुबह ८ बजे ! आप बच्चे के लिये अलार्म लगाकर रखते हैं। अपने घर के नौकर से बोलकर रखते हैं कि बच्चे को ५.३० बजे उठा देना और न उठे तो पानी डाल देना। आप अपने लड़के को तो सुबह उठा देते हैं, किन्तु बच्चे का बाप बोलता है, खबरदार ! हल्ला मत करना, मुझे ८ बजे तक मत उठाना। क्या यह लोकसंग्रह हुआ? आप स्वयं विचार करें।

आपसे पहले ही मैंने कहा है कि गीता संसार के घोर संसारियों के लिये नहीं है। मैंने कई घरों में देखा है कि गीता रखते हैं और उसकी पूजा करते हैं, फूल चढ़ाते हैं, चंदन लगाते हैं – उनकी गीता की पोथी मेरी उम्र की होगी। घर में उसकी पूजा हो रही है। प्रणाम करते-करते वह आधी घिस गयी, किन्तु कभी इसे खोलकर किसी ने पढ़ा नहीं। गीता केवल पूजा करने के लिये नहीं कही गयी है। गीता अर्थात् जो गाया गया हो। हम गाते तभी हैं, जब आनन्द में रहते हैं। यदि गीता हमें आनन्द की प्रेरणा न दे, गाने की इच्छा उत्पन्न न करे, आवृत्ति की इच्छा उत्पन्न न करे, तो किस काम की?

जीवन में ऐसे कार्य करें कि जो भी व्यक्ति हमारे संपर्क में आये उसे कुछ प्रेरणा मिले। आपका जीवन जैसा है, उसे और अधिक अच्छा बनायें। आपके बच्चे आप से और अधिक अच्छे हों। आपके पति, जब विवाह हुआ था, उससे अधिक उन्नत हों। आपकी पत्नी जब आपके घर आयी थी, उससे अधिक उन्नत हो। रूपये-साड़ी-जेवर में नहीं, व्यक्तित्व में उन्नत होना चाहिए। सबके व्यक्तित्व का विकास हो। आपके बच्चे शीलवान हों। यदि आप ऐसा करेंगे, तो यह लोक संग्रह होगा।

अब भगवान दूसरा दायित्व उन साधकों को दे रहे हैं, जिन्होंने गीता सिर्फ माना ही नहीं, बल्कि उसे जान लिया है। मानना तो पहली शर्त है जानने की। संसार के कितने लोगों ने भगवान को माना है, यह पर्याप्त नहीं है, कितनों ने जाना है, यह महत्वपूर्ण है। कुछ महापुरुषों ने भगवान को जाना है, उन्हें भगवान २६ वें श्लोक में कहते हैं –

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।। ३-२६

हे अर्जुन, सुनो, ऐसे विद्वानों - ज्ञानियों को दूसरे लोगों में भ्रम उत्पन्न नहीं करना चाहिये।

❖ **(क्रमशः)** ❖

कठोपनिषद्-भाष्य (३२)

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बन्धित गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, इनमें उन्हीं का संकलन है। श्रीशंकराचार्य ने वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। स्वामी विदेहात्मानन्द द्वारा किया हुआ कठोपनिषद्-भाष्य का सरल अनुवाद प्रस्तुत है। भाष्य में आये मूल श्लोक के शब्दों को रेखांकित कर दिया गया है और कठिन सन्धियों का विच्छेद कर सरल रूप देने का प्रयास किया गया है, ताकि नव-शिक्षार्थियों को तात्पर्य समझने में सुविधा हो। –सं.)

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ।। २/३/११

अन्वयार्थ – **स्थिराम्** अचल रूप से **इन्द्रिय-धारणाम्** इन्द्रियों के निरोध-रूप **ताम्** उस अवस्था को **योगम् इति** योग शब्द का वाच्य **मन्यन्ते** मानते हैं; (योगी) **तदा** उस अवस्था में **अप्रमत्तः** भ्रान्तिहीन (मायामुक्त) **भवति** हो जाते हैं; **हि** क्योंकि **योगः** योग **प्रभव-अप्ययौ** उत्पन्न तथा विलीन होनेवाला है। (अत: योगी को निरन्तर योगयुक्त रहना चाहिये)।

भावार्थ – अचल रूप से इन्द्रियों के निरोध-रूप उस अवस्था को योग शब्द का वाच्य मानते हैं; (योगी) उस अवस्था में भ्रान्तिहीन (मायामुक्त) हो जाते हैं; क्योंकि योग उत्पन्न तथा विलीन होनेवाला है। (अत: योगी को निरन्तर योगयुक्त रहना चाहिये)।

भाष्यम् – ताम् इदृशीं तत् अवस्थां योगम् इति मन्यन्ते, वियोगम् एव सन्तम्। सर्व-अनर्थ-संयोग-वियोग-लक्षणा हि इयम् अवस्था योगिनः। एतस्यां हि अवस्थायाम् अविद्या-अध्यारोपण-वर्जित-स्वरूप-प्रतिष्ठ आत्मा। स्थिराम् इन्द्रिय-धारणां स्थिराम् अचलाम् इन्द्रिय-धारणां बाह्य-अन्तःकरणानां धारणम् इत्यर्थः।

भाष्य-अनुवाद – यह वियोग ही है, तथापि ऐसी उस अवस्था को योग मानते हैं। योगी की यह (निर्विकल्प) अवस्था सभी प्रकार के अनर्थ संयोग की वियोग अवस्था है, क्योंकि इस अवस्था में वह अविद्या-वृत्ति के अध्यारोप से रहित होकर अपने आत्म-स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है। (इस अवस्था को) स्थिर इन्द्रिय-धारणा कहते हैं, जो बाह्य इन्द्रियों तथा अन्त:करणों की स्थिर अचल अवस्था है।

अप्रमत्तः प्रमाद-वर्जितः समाधानं प्रति नित्यं यत्नवान् तदा तस्मिन् काले यदा एव प्रवृत्त-योगो भवति इति सामर्थ्यात् अवगम्यते। न हि बुद्धि-आदि-चेष्टा-अभावे प्रमाद-सम्भवः अस्ति। तस्मात् प्राक् एव बुद्धि-आदि-चेष्टा-उपरमात् अप्रमादो विधीयते। अथवा यदा एव इन्द्रियाणां स्थिरा धारणा तदानीम् एव निरङ्कुशम् अप्रमत्तत्वम् इति अतः अभिधीयते अप्रमत्तः तदा भवति इति। कुतः? योगो हि यस्मात् प्रभवाप्ययौ उपजन-अपाय-धर्मक इति अर्थः अतः अपाय-परिहाराय अप्रमादः कर्तव्यः इति अभिप्रायः।। २/३/११ (११२)

तब वह सदैव अप्रमत्त अर्थात् निरन्तर सावधान रहकर चित्त की समाधान (एकाग्रता) के लिये प्रयत्नशील रहता है। – इस वाक्य से ऐसा ज्ञात होता है कि जब वह योग में प्रवृत्त होगा, (यह बात तब के लिये कही गयी है), क्योंकि समाधि में बुद्धि आदि की चेष्टा का अभाव हो जाने पर प्रमाद या असावधानी सम्भव ही नहीं है, अत: बुद्धि आदि की चेष्टा शान्त हो जाने के पहले ही (समाधि के आकांक्षियों के लिये) अप्रमाद का विधान किया गया है। या फिर (ऐसा अर्थ लिया जा सकता है कि) जब इन्द्रियों तथा मन आदि की स्थिर धारणा हो जाती है, तभी अबाध अप्रमत्तता (सावधानता) की उपलब्धि होती है। – क्यों? – इसलिये कि योग उत्पत्ति तथा लय गुणधर्म वाला है। अत: तात्पर्य यह है कि लय को रोकने के लिये सावधानता की आवश्यकता है।

*   *   *

बुद्धि-आदि-चेष्टा-विषयं चेद् ब्रह्म इदं तत् इति विशेषतः गृह्येत बुद्धि-आदि-उपरमे च ग्रहण-कारण-अभावात् अनुपलभ्यमानं न अस्ति एव ब्रह्म। यत् हि करण-गोचरं तत् अस्ति इति प्रसिद्धं लोके विपरीतं च असत् इति अतः च अनर्थको योगः। अनुपलभ्यमानत्वात् वा न अस्ति इति उपलब्धव्यं ब्रह्म इति एवं प्राप्ते इदम् उच्यते –

ब्रह्म यदि बुद्धि आदि की चेष्टा का विषय होता, तो फिर इसे विशेषतापूर्वक कह दिया जाता कि 'वह ऐसा-ऐसा है'; और बुद्धि आदि का लय हो जाने पर उसे ग्रहण करने का कोई साधन ही न रहने के कारण ब्रह्म का अस्तित्व ही नहीं रह जाता; क्योंकि लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि जो इन्द्रिय-गोचर है, उसी का अस्तित्व है और जो इसके विपरीत है, उसका अस्तित्व नहीं है। इससे योग निरर्थक हो जाता है; या ब्रह्म के उपलब्धि का विषय न होने के कारण उसका अस्तित्व ही नहीं है – ऐसी आशंका हो सकती है, अत: कहते हैं –

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ।। २/३/१२

अन्वयार्थ – परमात्मा **वाचा** वाणी के द्वारा **प्राप्तुम्** उपलब्धि

करने के **न एव शक्यः** योग्य नहीं है; **मनसा न** मन के द्वारा भी नहीं, **चक्षुषा न** नेत्र के द्वारा भी नहीं; **अस्ति इति** परमात्मा है – ऐसा **ब्रुवतः** जो कहते हैं, **अन्यत्र** (परन्तु यह) दूसरों अर्थात् नास्तिकों द्वारा **कथम्** कैसे **तत्** वह ब्रह्म **उपलभ्यते** अनुभूत किया जा सकता है।

भावार्थ – परमात्मा वाणी के द्वारा उपलब्धि करने के योग्य नहीं है; मन के द्वारा नहीं, नेत्र के द्वारा भी नहीं; जो कहते हैं – परमात्मा है, (परन्तु यह) दूसरों अर्थात् नास्तिकों द्वारा वह ब्रह्म कैसे अनुभूत किया जा सकता है।

भाष्यम् – नैव वाचा न मनसा चक्षुषा न अन्यैः अपि इन्द्रियैः प्राप्तुं शक्यते इत्यर्थः। तथापि सर्व-विशेष-रहितोऽपि जगतो मूलम् इति अवगतत्वात् अस्ति एव कार्य-प्रविलापनस्य अस्तित्व-निष्ठत्वात्। तथा हि इदं कार्यं सूक्ष्म-तारतम्य-पारम्पर्येण अनुगम्यमानं सद्बुद्धि-निष्ठाम् एव अवगमयति।

भाष्य-अनुवाद – यह सत्य है कि (ब्रह्मरूपी अन्तरात्मा को) वाणी, या मन या नेत्र या अन्य इन्द्रियों द्वारा भी ग्रहण नहीं किया जा सकता; तथापि समस्त विशेषणों से रहित होने पर भी यही जगत् का मूल कारण समझ में आता है, क्योंकि किसी कार्य-वस्तु का लय (लोप) हो जाने पर वह किसी अन्य वस्तु में विलीन होती है। उसी प्रकार (ब्रह्माण्ड-रूपी) यह कार्य सूक्ष्मता के तारतम्य (उत्तरोत्तर) क्रम से सद्बुद्धि (अस्तित्व-ज्ञान) रूप सीमा का ही बोध कराता है।

यदा अपि विषय-प्रविलापनेन प्रविलाप्यमाना बुद्धिः तदा अपि सा सत्प्रत्यय-गर्भ-एव विलीयते। बुद्धिः हि नः प्रमाणं सत्-असतः याथात्म्य-अवगमे। मूलं चेत् जगतः न स्यात् असत् अन्वितम् एव इदं कार्यम् असत् इति एवं गृह्येत न तु एतत् अस्ति; सत्सत् इति एव तु गृह्यते; यथा मृद्-आदि-कार्यं घट-आदि मृद्-आदि-अन्वितम्। तस्मात् जगतः मूलम् आत्मा अस्ति इति एव उपलब्धव्यः।

जब (कार्यरूप) विषय का बुद्धि में विलय कराया जाता है, तब भी विलीन होती हुई बुद्धि सत् वस्तु को गर्भ में लेकर ही विलीन होती है। (चूँकि) सत् और असत् वस्तु के यथार्थ स्वरूप के निर्धारण में बुद्धि ही हमारा प्रमाण है। अत: जैसे मिट्टी आदि के कार्य घट आदि 'मृद्घट' (अपने कारण) मृत्तिका आदि के साथ समन्वित होकर ही उपलब्ध होते हैं, वैसे ही यदि जगत् का कोई मूल या कारण नहीं होता, तो फिर असत् से समन्वित यह कार्य (जगत्) असत् के रूप में ही गृहीत या उपलब्ध होता। अत: यही समझना होगा कि जगत् का मूल कारण अन्तरात्मा है।

कस्मात्? अस्ति इति ब्रुवतः अस्तित्ववादिनः आगम-अर्थ-अनुसारिणः श्रद्दधानात् अन्यत्र नास्तिक-वादिनि नास्ति जगतः मूलम् आत्मा, निरन्वयम् एव इदं कार्यम् अभावान्तं प्रविलीयते इति मन्यमाने विपरीत-दर्शिनि कथं तद् ब्रह्म तत्त्वतः उपलभ्यते न कथञ्चन-उपलभ्यते इत्यर्थः।। २/३/१२ (११३)।।

कैसे? – ऐसे कि (जगत् का कारण आत्मा) 'है' – जो श्रद्धावान् लोग शास्त्र के अर्थ का अनुसरण करते हुए ऐसा मानते हैं, उनसे भिन्न नास्तिकवादी मानते हैं कि इस जगत् का मूल कारण आत्मा नहीं है, यह कार्य असम्बद्ध (स्वाधीन) है, अन्त में अभाव में विलीन हो जाता है। ऐसा मानने वाले उन विपरीत-दर्शियों को वह ब्रह्म भला कैसे उपलब्ध हो सकता है? अर्थात् किसी भी प्रकार उपलब्ध नहीं हो सकता।

* * * ❖ (क्रमशः) ❖

विवेक-चूडामणि

श्री शंकराचार्य

सततविमलबोधानन्दरूपं समेत्य
त्यज जडमलरूपोपाधिमेतं सुदूरे।
अथ पुनरपि नैष स्मर्यतां वान्तवस्तु
स्मरणविषयभूतं कल्पते कुत्सनाय।।४१४।।

अन्वय – सततविमल-बोधानन्दरूपं समेत्य एतं जड-मल-रूपोपाधिं सुदूरे त्यज। अथ एषः स्मर्यतां अपि न, वान्तवस्तु स्मरणविषयभूतं कुत्साानाय कल्पते।

अर्थ – सतत विमलबोध तथा आनन्दरूप आत्मा की अनुभूति करके इस जड़ तथा मलरूप उपाधि (शरीर) को दूर त्याग दो। इसके बाद इस शरीर का स्मरण तक मत करो, क्योंकि उल्टी की हुई वस्तु की स्मृति घृणा ही पैदा करती है।

समूलमेतत्परिदाह्य वह्नौ
सदात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे।
ततः स्वयं नित्यविशुद्धबोधा-
नन्दात्मना तिष्ठति विद्वरिष्ठः।।४१५।।

अन्वय – एतत् समूलं, निर्विकल्पे सदात्मनि ब्रह्मणि वह्नौ परि-दह्य ततः विद्वरिष्ठः स्वयं नित्य-विशुद्ध-बोधानन्दात्मना तिष्ठति।

अर्थ – श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी – इस (देह आदि दृश्य प्रपंच) को, उसके मूल अविद्या के साथ, सत्स्वरूप निर्विकल्प ब्रह्मज्ञान की अग्नि में पूरी तौर से जलाने के बाद स्वयं नित्य-विशुद्ध बोधानन्द-स्वरूप आत्मा के साथ विराज करता है।

प्रारब्धसूत्रग्रथितं शरीरं
प्रयातु वा तिष्ठतु गोरिव स्रक्।
न तत्पुनः पश्यति तत्त्ववेत्ता-
ऽऽनन्दात्मनि ब्रह्मणि लीनवृत्तिः।।४१६।।

अन्वय – प्रारब्ध-सूत्र-ग्रथितं शरीरं प्रयातु वा तिष्ठतु, गोः स्रक् इव, तत्त्ववेत्ता तत् पुनः पश्यति न, आनन्द-आत्मनि ब्रह्मणि लीनवृत्तिः।

अर्थ – गाय के गले में पड़ी माला के समान, प्रारब्ध-कर्मों द्वारा गुँथा हुआ यह शरीर चला जाय या रहे – आनन्द-स्वरूप ब्रह्म में जिसकी सारी वृत्तियाँ लीन हो गयी हैं, ऐसा तत्त्ववेत्ता उस ओर फिर नहीं देखता।

अखण्डानन्दमात्मानं विज्ञाय स्वस्वरूपतः।
किमिच्छन् कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति तत्त्ववित् ।४१७

अन्वय – अखण्डानन्दं आत्मानं स्व-स्वरूपत: विज्ञाय किम् इच्छन् वा कस्य हेतोः तत्त्ववित् देहं पुष्णाति?

अर्थ – स्वरूप से अपने को अखण्ड-आनन्दमय आत्मा के रूप में अनुभूति करने के बाद, तत्त्ववेत्ता भला क्या इच्छा करता हुआ और किस हेतु से शरीर का पोषण करेगा?

संसिद्धस्य फलं त्वेतज्जीवन्मुक्तस्य योगिनः।
बहिरन्तः सदानन्दरसास्वादनमात्मनि ।।४१८।।

अन्वय – संसिद्धस्य जीवन्मुक्तस्य योगिनः सदा बहिः अन्तः आत्मनि आनन्द-रस-आस्वादनं तु एतत् फलं।

अर्थ – आत्मज्ञ जीवन्मुक्त सिद्ध योगी को सर्वदा अपने बाहर तथा भीतर, आत्मा में आनन्द-रस का स्वाद मिलता रहता है – यही (आत्मज्ञान का) फल है।

वैराग्यस्य फलं बोधो बोधस्योपरतिः फलम्।
स्वानन्दानुभवाच्छान्तिरेषैवोपरतेः फलम् ।।४१९।।

अन्वय – वैराग्यस्य फलां बोध:, उपरतिः बोधस्य फलम्, स्वानन्द-अनुभवात् शान्तिः एषः एव उपरतेः फलम्।

अर्थ – वैराग्य का फल है ज्ञान, ज्ञान का फल है (बाह्य विषयों से) उपरति और उपरति का फल है – आत्मानन्द की अनुभूति से शान्ति।

यद्युत्तरोत्तराभावः पूर्वपूर्वन्तु निष्फलम्।
निवृत्तिः परमा तृप्तिरानन्दोऽनुपमः स्वतः।।४२०।।

अन्वय – यदि उत्तरोत्तर-अभावः तु पूर्वपूर्वं निष्फलम्। निवृत्तिः, परमा तृप्तिः अनुपमः आनन्दः स्वतः।

अर्थ – यदि परवर्ती अवस्थाओं का अभाव हो, तो पूर्ववर्ती अवस्थाएँ निष्फल हैं, (परन्तु पिछले श्लोक में कथित वैराग्य, बोध व उपरति का क्रम ठीक हो, तो) स्वतः ही विषयों से निवृत्ति, परम तृप्ति और अनुपम आनन्द की उपलब्धि होती है।

दृष्टदुःखेष्वनुद्वेगो विद्यायाः प्रस्तुतं फलम्।
यत्कृतं भ्रान्तिवेलायां नाना कर्म जुगुप्सितम्।
पश्चान्नरो विवेकेन तत्कथं कर्तुमर्हति ।।४२१।।

अन्वय – दृष्ट-दुःखेषु अनुद्वेगः विद्यायाः प्रस्तुतं फलां। भ्रान्ति-वेलायां यत् नाना जुगुप्सितम् कर्म कृतं, विवेकेन पश्चात् नरः तत् कथं कर्तुम् अर्हति।

अर्थ – सामने आये दु:ख में उद्विग्न न होना, यह ब्रह्मविद्या का प्रत्यक्ष फल है। (माया रूपी अध्यास की) भ्रान्ति के समय (मनुष्य द्वारा) जो विभिन्न निन्दनीय कर्म किये जाते हैं, विवेक हो जाने के बाद वह उन्हें भला कैसे कर सकता है?

विद्याफलं स्यादसतो निवृत्तिः
प्रवृत्तिरज्ञानफलं तदीक्षितम्।
तज्ज्ञाज्ञयोर्यन्मृगतृष्णिकादौ
नोचेद्विदां दृष्टफलं किमस्मात् ।।४२२।।

अन्वय – असतः निवृत्तिः विद्या-फलं स्यात्, प्रवृत्तिः अज्ञान-फलम्, यत् मृगतृष्णिकादौ तत्-ज्ञ-अज्ञयोः तत् ईक्षितम्। चेत् नो विदां अस्मात् दृष्टफलं किं?

अर्थ – विद्या का फल है – असत् (मिथ्या) वस्तु (संसार) से निवृत्ति और अज्ञान का फल है उसमें (असत् विषयों में) प्रवृत्ति। मृगमरीचिका (सीपी-रजत) आदि में ज्ञानी तथा अज्ञानी का उस प्रकार (निवृत्ति तथा प्रवृत्ति) देखने में आती है। ऐसा यदि (निवृत्ति-प्रवृत्ति-भेद) न होता, तो ब्रह्मज्ञानी को इससे भिन्न दूसरा दृष्ट फल क्या होगा?

अज्ञानहृदयग्रन्थेर्विनाशो यद्यशेषतः।
अनिच्छोर्विषयः[1] किं नु प्रवृत्तेः कारणं स्वतः।।४२३।।

अन्वय – यदि अज्ञान-हृदयग्रन्थेः अशेषतः विनाशः, विषयः स्वतः अनिच्छोः प्रवृत्तेः कारणं किं नु?

अर्थ – यदि अज्ञानजनित हृदयग्रन्थि का समूल विनाश हो जाय, तो अनिच्छु (कामनाहीन) व्यक्ति के लिये स्वयं विषय ही भला कैसे प्रवृत्ति का कारण हो सकता है?

वासनानुदयो भोग्ये वैराग्यस्य तदावधिः।
अहंभावोदयाभावो बोधस्य परमावधिः।
लीनवृत्तेरनुत्पत्तिर्मर्यादोपरतेस्तु सा ।।४२४।।

अन्वय – (यदा) भोग्ये वासना-अनुदयः, तदा वैराग्यस्य अवधिः, अहं-भाव-उदय-अभावः बोधस्य परमावधिः, तु लीनवृत्तेः अनुत्पत्तिः सा उपरतेः मर्यादा।

अर्थ – जिस अवस्था में भोग्य विषयों के प्रति कामना-वासना का उदय नहीं होता, उसे 'वैराग्य' की परम सीमा जानो। जिस अवस्था में अहंभाव का उदय नहीं होता, उसे 'बोध' (ज्ञान) की अन्तिम सीमा जानो। और जिस ब्रह्म-आत्मा के ऐक्यबोध की अवस्था में चित्तवृत्ति विलीन होकर वापस नहीं लौटती, उसे 'उपरति'[2] की सीमा समझो।

❖ (क्रमशः) ❖

१. पाठभेद – विदुषः

२. द्र. स्वामी विद्यारण्य कृत 'पंचदशी', अध्याय ६, २८५-८६
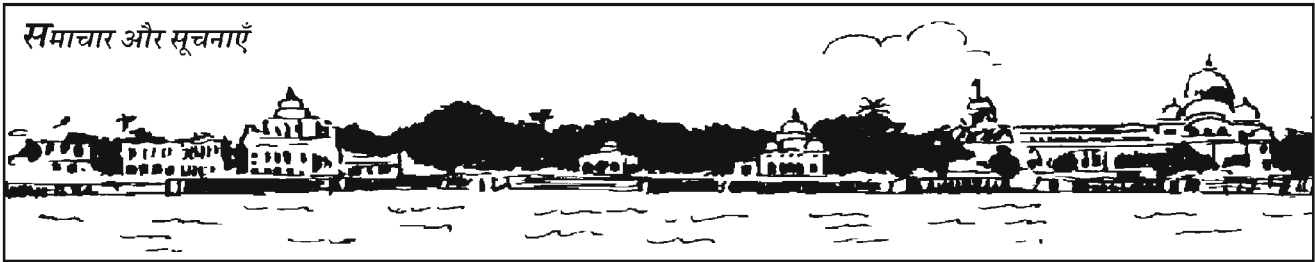
विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सत्संग भवन में प्रतिदिन सन्ध्या ६ बजे विभिन्न प्रकार की प्रतियोगितायें आयोजित की गयीं –

१५ जनवरी, मंगलवार को अन्तर्महाविद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। विषय था – "वर्तमान भारत और स्वामी विवेकानन्द"। इस प्रतियोगिता में शासकीय नागार्जुन स्नात्कोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर के छात्र दिनेश गौतम ने प्रथम और कोलम्बिया कॉलेज की छात्रा सृष्टि शर्मा, विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा के छात्र गणेष राम और शासकीय इंजीनियरिंग कॉलेज, रायपुर की छात्रा कुमारी निहारिका अग्रवाल ने द्वितीय स्थान प्राप्त किये।

महामाया इंजिनीयरिंग कॉलेज के छात्र हरीश साहू ने कहा – "फूलों में फूलना, झूलों में झूलना। पर इतना याद रखना स्वामीजी के आदर्शों को कभी न भूलना।" कु. निहारिका अग्रवाल ने कहा, "एक जगह ऐसा हो जहाँ इंसान बनाया जाय। अगर पड़ोसी भूखा हो, तो हमसे भी न सोया जाय।। हम भाग्यशाली हैं कि हमें विवेकानन्द के विचार और आदर्श हमें विरासत में मिले हैं।" गणेषराम ने कहा, "फूलों की शय्या तजकर काँटों को जो अपनाता है। वह मनुष्य इस वसुधा में निज नाम अमर कर जाता है।। जहाँ शिक्षक नीतिपरायण होते हैं, वहाँ महान लोग जन्म लेते हैं।" कुमारी सोनी ने कहा, "स्वामीजी की जीवन शैली और चरित्र पूरा का पूरा अनुकरणीय है।" संतोष कुमार अहिरवार ने कहा, "मनुष्य मनुष्य के दर्द को नहीं समझता, हमें उसे समझना होगा।" विमलेश कुमार पड़वार ने कहा, "मानवीय चेतना को उन्नत बनाने में स्वामी विवेकानन्द का बहुत बड़ा योगदान था। आज भी हमारे देश में गरीबी, अशिक्षा है और लोगों का झोपड़ियों में निवास है, हमें इसे दूर करना होगा।" अंकुर शिवलहरे ने कहा, "जीवन में वही सफल होता है, जो अपनी क्षमताओं को पहचान कर समय-समय पर उसका विकास करता है।" महामाया इंजीनियरिंग कॉलेज के छात्र आशीष पटेल ने कहा, "संन्यासी के परिवार छोड़ने के बाद सारा राष्ट्र ही उसका परिवार बन जाता है। स्वामीजी के आदर्शों पर चलकर एक नये समाज की स्थापना की जा सकती है।" इस सत्र की अध्यक्षता विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान के निदेशक मुकुन्द माधव हम्बर्डे जी ने की।

१६ जनवरी, बुधवार को अन्तर्महाविद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इसमें विभिन्न सम-सामयिक विषयों पर छात्र-छात्राओं ने चर्चा की। इस प्रतियोगिता के प्रथम पुरस्कार विजेता बोनी उपाध्याय ने 'शहरी और ग्रामीण शिक्षा' के अन्तर को स्पष्ट किया। द्वितीय पुरस्कार विजेता नितेश धनखड़ ने 'राष्ट्र-निर्माण में युवाओं का दायित्व' विषय पर कहा, "युवाओं के कंधों पर ही राष्ट्र-निर्माण का भार है। युवकों का निर्माण आचार्यों और गुरुओं का ही होता है। युवा ही राष्ट्र की पहचान है। युवा-पीढ़ी ही देश को बचा सकती है।"

इस सत्र की अध्यक्षता नये रायपुर के महाप्रबन्धक श्री विनोद कुमार लाल ने की। उन्होंने कहा, "१२ जनवरी को विवेकानन्द स्मारक शिला, कन्याकुमारी में लाख की संख्या में युवकों ने दर्शन कर स्वामीजी से प्रेरणा लिया। आज पूरे देश को नयी युवा पीढ़ी दिखने लगी है। युवक सकारात्मक ऊर्जा को राष्ट्र-निर्माण में लगायें।" उन्होंने नैतिक जीवन के कई महापुरुषों के दृष्टान्त भी दिये।

१७ जनवरी, वृहस्पतिवार को अन्तर्महाविद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी, जिसका विषय था – "इस सदन की राय में सह-शिक्षा छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व-विकास में बाधक है।" कोलम्बिया इंस्टीट्युट ऑफ इंजीनियरींग एंड टेक्रोलॉजी की छात्रा सृष्टि शर्मा ने विषय के पक्ष में अपने विचार प्रस्तुत कर प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। शासकीय नागार्जुन स्नात्कोत्तर विज्ञान महाविद्यालय के छात्र बोनी उपाध्याय ने विपक्ष में अपने मत देकर द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया।

सत्र की अध्यक्षता करते हुये विज्ञान महाविद्यालय के प्राचार्य श्री के.एन. बापट जी ने कहा, "यदि महिलाओं को मंगल ग्रह और पुरुषों को इस पृथ्वी पर रखा जाय, तो क्या समस्याओं का समाधान हो जायेगा? यदि समस्यायें हैं, तो उसका समाधान ढूँढ़ना होगा। पक्ष-विपक्ष दोनों मिलकर साथ बैठकर समस्याओं का समाधान ढूँढ़ें।" सदन विपक्ष में था।

१८ जनवरी, शुक्रवार को 'इस सदन की राय में देश में व्याप्त भ्रष्टाचार का उन्मूलन केवल शासन द्वारा सम्भव नहीं है' विषय पर अन्तर्विद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी। प्रथम पुरस्कार विजेता विवेकानन्द विद्यापीठ के छात्र खिलेश कुमार ने पक्ष में कहा कि देश में ३० लाख कानून हैं, किन्तु

सभी मिलकर घोटाले और भ्रष्टाचार को नहीं रोक पा रहे हैं, अत: आज समाज में नैतिक शिक्षा की जरूरत है। मनुष्यों में संस्कृति और मर्यादा को जगाने की आवश्यकता है।'' द्वितीय पुरस्कार विजेतृ कांगेर वेली एकेडमी, रायपुर की छात्रा कुमारी दृष्टि कोठारी ने (विपक्ष) में कहा, ''आज का शासक जनता का रक्षक नहीं भक्षक है। कर्तव्य के प्रति उदासीन है। जबकि शासन में वफादारी, इमानदारी होनी चाहिये।''

इस सत्र की अध्यक्षता रविशंकर विश्वविद्यालय के समाज शास्त्र के विभागाध्यक्ष श्री प्रमोद कुमार शर्मा जी ने की थी।

१९ जनवरी, शनिवार को अन्तर्विद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी। इसमें विवेकानन्द विद्यापीठ के महेन्द्र कुर्रे ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। उन्होंने 'मेरे गुरुजन' विषय पर कहा कि प्रथम गुरु माता-पिता ही होते हैं, जो बोलना-चलना और समाज में रहना सिखाते हैं। मेरे गुरु ने ही मुझे सिखाया है कि मुझे एक अच्छा इंसान बनना है। स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों से मेरे गुरुजनों ने ही मुझे अवगत कराया। द्वितीय पुरस्कार प्राप्तकर्ता विवेकानन्द विद्यापीठ के ही छात्र घनश्याम साहू ने 'बिन बिजली सब सून' पर बिजली की महिमा को बड़ा नाटकीय ढंग से प्रतिपादित कर सबको मोहित कर दिया।

इस सत्र की अध्यक्षता शासकीय नागार्जुन स्नात्कोत्तर विज्ञान महाविद्यालय के रक्षा विभागाध्यक्ष श्री गिरीश पाण्डेय जी ने की। उन्होंने कहा कि बच्चो, इस उम्र में खूब पढ़िये और खूब खेलिये। यदि हममें ये तीन गुण हैं – बोलने की क्षमता, कलम में शक्ति और हम कर्मयोगी हों, तो हम इस जीवन के बाद भी जीवित रह सकते हैं।

२० जनवरी, रविवार को अन्तर्विद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन था। विषय था – ''भारतीय नवजागरण के उद्‌गाता स्वामी विवेकानन्द''। इस प्रतियोगिता में दो छात्रों को प्रथम पुरस्कार मिला। विवेकानन्द विद्यापीठ के खिलेश कुमार और सालेम इंगलिश स्कूल के मानवेन्द्र ठाकुर को। मानवेन्द्र ने स्वामीजी की महिमा में कहा –

हिमालय भी जिनकी ऊँचाई नाप नहीं सकता,
सागर भी जिनकी गहराई माप नहीं सकता।
मानवीय धरातल का ऐसा महान व्यक्तित्व,
उन्हें आकाश भी अपनी बाँहों में थाम नहीं सकता।।

द्वितीय पुरस्कार एस. एस. कालीबाड़ी उ.मा. शाला के छात्र विवेक तिवारी ने प्राप्त किया।

इस सत्र की अध्यक्षता करते हुये रायपुर के प्रसिद्ध नाक-कान-गला विशेषज्ञ डॉ. विपल्व दत्ता जी ने स्वामीजी के प्रेरक जीवन-चरित पर प्रकाश डाला।

२१ जनवरी, सोमवार को होनेवाली 'अन्तर्माध्यमिक शाला विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' का विषय था – ''राष्ट्र निर्माता स्वामी विवेकानन्द''। कांगेर वैली एकेडमी, रायपुर की छात्रा कुमारी पूर्वा अग्रवाल ने प्रथम स्थान प्राप्त किया और उसी विद्यालय के सम्यक् जैन ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

इस सत्र की अध्यक्षता रविशंकर विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र के प्राध्यापक डॉ. रवीन्द्र ब्रह्मोजी ने की।

२२ जनवरी, मंगलवार को 'अन्तर्माध्यमिक शाला वाद-विवाद प्रतियोगिता' आयोजित थी, जिसका विषय था ''इस सदन की राय में जीवन में सफलता के लिये धन की अपेक्षा विद्या अधिक महत्वपूर्ण है''। इसमें प्रथम पुरस्कार विजेता विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के छात्र हेमन्त बारले ने पक्ष में कहा – ''जिसने अपने जीवन में विद्या की अपेक्षा धन को महत्व दिया है, उसका धन अधिक नहीं टिक सका है।'' द्वितीय पुरस्कार विजेता विद्यापीठ के ही छात्र विशाल सतरंज ने भी पक्ष में कहा कि विद्या के बल पर ही अपनी विद्वत्ता से स्वामी विवेकानन्द जी ने अमेरिकावासियों को अभिभूत कर दिया था। धन प्राप्त करने में विद्या ही समर्थ है।'' कुमारी सिद्धि तिवारी ने कहा कि जिसके पास धन हो और विद्या न हो, वह अपना सर्वनाश कर डालता है। जैसे रावण के पास धन तो बहुत था, पर विद्या के अभाव में उसने अपना नाश कर डाला। भगवान श्रीराम वनवासी थे, उनके पास धन नहीं था, किन्तु विद्या के बल पर ही उन्होंने रावण को मारकर रामराज्य की स्थापना की।'' सदन भी विद्या के पक्ष में था।

इस सत्र की अध्यक्षता करते हुये रविशंकर विश्वविद्यालय में मानवविज्ञान विभागाध्यक्ष डॉ. मिताश्री मित्र ने कहा कि विद्या ही जीवन में विनम्रता देती है और आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करती है। ज्ञान विद्या से ही प्राप्त होता है। आप विद्या का अर्जन करें। आप-हम ज्ञानार्जन में लगे रहें। आप मनुष्य बनने की कामना करें, इसी से सुख-समृद्धि आयेगी।

२३ जनवरी, बुधवार को 'अन्तर्प्राथमिक पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता' का आयोजन था। इसमें बंसल पब्लिक स्कूल, रायपुर की छात्रा श्रीप्रिया तिवारी ने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। सन्त श्री आसारामजी गुरुकुल, रायपुर की छात्रा कुमारी तनिशा देवांगन ने स्वामीजी के सफलता का रहस्य का पाठ कर द्वितीय स्थान प्राप्त किया। प्रथम देवांगन, मदर्स प्राइड हा.से. स्कूल, रायपुर के छात्र अमितेश मिश्रा, छत्रपाल साहू, शुभांषु गेड़ेकन, विवेकानन्द विद्यापीठ के निलेश कुमार कोसरिया, दीपेश कोसरिया, अविनाश भारद्वाज, और सुष्मिता ताम्रकार ने भी बड़े प्रेरक उद्धरण प्रस्तुत किये।

इस सत्र की अध्यक्षता रविशंकर विश्वविद्यालय की प्राध्यापिका श्रीमती शैल शर्मा जी ने किया। उन्होंने कहा कि शिक्षा जिज्ञासा है। सफलता के लिये अपने अन्तर्मन पर विश्वास

करें। महान स्वप्न देखें। भारत और विश्व को आगे बढ़ाने के लिये हमें मानवता की जरुरत है। स्वामीजी ने इसी मानवता का संदेश दिया।

अन्त में सभी प्रतिभागियों को 'विवेकानन्द की बोध कथायें' नामक पुस्तक और चॉकलेट दिये गये। सभी प्रतियोगिता-सत्रों का आयोजन-संचालन स्वामी ब्रजनाथानन्द जी ने किया।

विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन और पुरस्कार वितरण

२५ जनवरी, शुक्रवार को विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन एवं पुरस्कार वितरण रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के सचिव, श्रीमत् स्वामी व्याप्तानन्द जी महाराज के कर-कमलों से प्रदान किया गया। उन्होंने कहा – "जैसे बेलूड़ मठ में एक अद्भुत आनन्द की अनुभूति होती है, वैसे ही नारायणपुर में भी जो लोग जाते हैं, उन्हें प्रसन्नता होती है। इसका पूरा श्रेय वहाँ के बच्चों का है। क्योंकि बच्चे हार्दिक प्रार्थना, स्तोत्र-पाठ करते हैं, इसलिये वहाँ का वातावरण अच्छा बना हुआ है।" सभा की अध्यक्षता श्री सदाराम गुप्ता जी ने की। स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने आश्रम प्रतिवेदन पढ़कर आश्रम की गतिविधियों से जनसमूह को अवगत कराते हुये कहा – "हमारी संस्था सेवा-संस्थान नहीं, यह मुक्ति का साधन है। रामकृष्ण मठ-मिशन मूल रूप से आध्यात्मिक संस्था है। स्वामीजी ने आत्मनोमोक्षार्थं के साथ सेवा करने का भी निर्देश दिया।" सभा का संचालन, स्वागत-भाषण एवं धन्यवाद ज्ञापन स्वामी निर्विकारानन्द जी ने की।

राजेश रामायणी जी के भजन हुये

स्वामी विवेकानन्द जी के जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष्य में ३ फरवरी, २०१३ को गायक-कथाकार श्री राजेश्वरानन्द सरस्वती जी ने आश्रम के रामकृष्ण मंदिर में भक्तिमय भजन प्रस्तुत किये।

रामायण प्रवचन

भक्तों की भक्तिवृद्धि हेतु भक्तिवर्धिनी रसमयी संगीतमयी रामकथा के मर्मज्ञ स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती (राजेश रामायणी) जी महाराज ने २६ जनवरी, शनिवार से लेकर ३ फरवरी, रविवार तक 'हनुमत चरित' पर संगीतमय प्रवचन दिया।

(रिपोर्टींग – दिनेश गौतम और गजेन्द्र पटेल, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर)

❑❑❑

सूचना

रामकृष्ण मठ, बेलूड़

पो. बेलूड़ मठ, जिला हावड़ा
पश्चिमी बंगाल, ७११ २०२
दूरभाष : (०३३) २६५४-११४४, ११८०
फैक्स : (०३३) २६५४-४३४६
Email : rkmhq@belurmath.org
rkmhqoffice@gmail.com

प्रिय मित्रो,

'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' और 'माँ की बातें' ग्रन्थों में हमें ऐसे अनेक व्यक्तियों के नाम मिलते हैं, जो श्रीरामकृष्ण तथा श्री सारदा देवी के सम्पर्क में आये थे। कहना न होगा कि अनेक लोग उन पुण्यात्मा व्यक्तियों के वंशजों के विषय में जानने के इच्छुक हैं कि वे कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं आदि आदि।

यदि आपके पास श्रीरामकृष्ण तथा श्री सारदा देवी के शिष्यों तथा भक्तों के वंशजों के विषय में कोई प्रामाणिक जानकारी हो, तो कृपया हमें भेज दें। हम इन सूचनाओं का अध्ययन करेंगे और इस विषय में रुचि रखनेवाले लोगों को उपलब्ध करायेंगे।

स्वामी सुहितानन्द
महासचिव